¨ÉvªÉ|Én¶É {ÉSÉÉÊªÉEòÉ

+|Éè±É 2014

JÉoÉvÉ ºÉ¨{ÉÉnEò

®PÉ´ÉÒ®ú ¸ÉÒ´ÉÉºiÉ´É

ºÉ¨Éx´ÉªÉ

ºÉ®ú¶É ÊiÉ´ÉÉ®úÒ

ºÉ¨{ÉÉnEò

®ÉVÉÒ´É ÊiÉ´ÉÉ®úÒ

={É ºÉ¨{ÉÉnEò

®úVÉxÉÉ ÊSÉiÉ±É

´ÉäoÉºÉÉ<]

+Éi¨ÉÉ®úÉ¨É ¶É´ÉÉ

Eò¨{ªÉÚÊ]ÆMÉ

+±{ÉxÉÉ ®úÉ`öÉè®ú

+ÉEò±{ÉxÉ

+É±ÉäÉEòÉ MÉ{iÉÉ

Ê´ÉxÉªÉ ¶ÉÉEò¤ÉÉ ®úÉªÉ

BEò |ÉÊiÉ : nùÉä ¯û{ÉªÉä

´ÉÉÌ¹ÉEò : nùºÉ ¯û{ÉªÉä

ºÉ¨{ÉEò

¨ÉvªÉ|Én¶É {ÉSÉÉÊªÉEòÉ

¨ÉvªÉ|Én¶É ¨ÉÉvªÉ¨É

40, |ÉÊ¶ÉIÉhÉ ¨ÉÉMÉÇ, +®äúÉ Ê½±É

¦ÉÉä{ÉÉ±É-462011

¡òÉäxÉ : 2764742, 2551330

¡èòCºÉ : 0755-4228409

Eò{ÉªÉÉ ´ÉÉÌ¹ÉEò ¶ÉÖ±Eò ¨ÉxÉÒ+Éb®ú ¨ÉvªÉ|Én¶É ¨ÉÉvªÉ¨É, ¦ÉÉä{ÉÉ±É Eò xÉÉ¨É ºÉ ¦ÉVÉå*

¨ÉvªÉ|Én¶É {ÉSÉÉÊªÉEòÉ ¨É ´ªÉHò Ê´ÉSÉÉ®ú ±ÉJÉEòÉ Eò +{ÉxÉ ½,

<ºÉEò Ê±ÉB ºÉ¨{ÉÉnEò EòÒ ºÉ½¨ÉÊiÉ +Ê´É´ÉÉªÉ xÉ½Ó ½*

जल से करना सीखिए, विघ्नों का प्रतिकार
पत्थर को भी काटती-जिसकी शीतल धार
वंदन इस कारण नहीं गढ़े कि शालिग्राम
तुझमें जीवन इसलिए सरिता तुझे प्रणाम

विशेष : पानी बचाने की पहल 3

प्रयास : नींव से शिखर तक 6

जल संरक्षण : यदि पानी नहीं बचा तो जीवन कैसे बचेगा 9

वेदोक्ति : वेदों में जल का महत्व 11

संस्कृति : जलेस्मिन् सन्निधिं कुरू... 13

संरक्षण : मध्यप्रदेश में भूजल क्या खोया क्या पाया 15

साक्षात्कार : धरती के बुखार और मौसम के बिगड़ते मिजाज को बचाने की पहल 18

संस्मृति : भीमकुण्ड की आत्मकथा 20

धरोहर : पानी की प्रेम कहानी 23

जल संरक्षण : सुनो कहानी एक थी धरती, उसमें था पानी 32

नवाचार : लापोड़िया : जहाँ पहुँचकर चकरा जाता है अकाल 34

खेती-किसानी : सिंचाई के समय जल के अपव्यय को रोकना 38

पहल : जल संरक्षण : महत्व, मायने और मूल्य 42

उपाय : जल स्रोत रिचार्जिंग में सावधानी जरूरी 46

आपकी बात : मोबाइल मैसेज प्रेरित करेंगे मतदान के लिए 47

É|ÉªÉ {ÉÉ`öEòÉ,

हम हमेशा से कहते और सुनते आ रहे हैं कि जल ही जीवन है। जल के बिना इस संसार में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। गर्मियों का मौसम शुरू होते ही मध्यप्रदेश सहित पूरे देश में जल संकट गहराने लगता है। जल संकट से बचने का एक ही उपाय है जल संरक्षण। पानी बचाने के लिए जनमानस द्वारा विभिन्न प्रयास किये भी जा रहे हैं इन्हीं प्रयासों की जानकारी को 'विशेष' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित किया जा रहा है। बरसात के पानी का संरक्षण कर पानी की किल्लत को दूर किया जा सकता है। पानी को यदि बचाया जा सकता है तो जागरूकता और समाज की सक्रिय भागीदारी से। यदि पानी को बचाने की दिशा में कड़े कदम नहीं उठाए गए तो आने वाले समय में जल संकट विकराल रूप ले सकता है। जल संकट और उसके निवारण की जानकारी को 'जल संरक्षण' स्तंभ में प्रकाशित किया जा रहा है। पानी हमारी संस्कृति का मूल आधार रहा है। नदियों के किनारे ही भारतीय संस्कृति और परम्परा जन्मी, पली-बढ़ी और विकसित हुई। इसीलिए हमारी संस्कृति में जल, नदियों और जलाशयों को पवित्र और पूजनीय माना गया है। संस्कृति स्तंभ में हमने जल संस्कृति पर केन्द्रित विचार प्रकाशित किए हैं।

पेयजल का सबसे बड़ा स्त्रोत भूजल होता है। कुएँ, बावड़ी, नलकूप आदि भूजल प्राप्ति के साधन रहे हैं। मध्यप्रदेश में जल संरक्षण के प्रयास विभिन्न शासकों द्वारा सदियों से किये जा रहे हैं। प्रदेश में कई ऐतिहासिक स्थान हैं जहाँ जल के संरक्षण की दिशा में हुए प्रयासों के प्रमाण मिले हैं। इन सबकी जानकारी को 'संरक्षण' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित किया गया है। रैमन मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित डॉ. राजेन्द्र सिंह ने जल संरक्षण की दिशा में सराहनीय काम किया है। 'साक्षात्कार' स्तंभ में हमने उनसे की गई बातचीत के अंश प्रकाशित किये हैं।

मध्यप्रदेश में कई तालाब और जल संरचनाएँ जल संरक्षण के अनूठे उदाहरण हैं। राजधानी भोपाल की पहचान भोजताल के बारे में कहा गया है कि तालों में ताल भोपाल ताल बाकी सब तलैया। 'संस्मृति' स्तंभ में भोजताल के निर्माण से जुड़ी स्मृतियों की जानकारी दी गई है। प्रदेश के धार जिले का माण्डव किला, ऐतिहासिक इमारतों, कुण्ड और बावड़ियों के लिये जाना जाता है, इसकी जानकारी हमने 'धरोहर' स्तंभ में प्रकाशित की है। 'नवाचार' स्तंभ में हमने लापोड़िया गाँव में जल संरक्षण की दिशा में हुए सफल प्रयासों की जानकारी प्रकाशित की है। भारत कृषि प्रधान देश है और पानी के बिना लहलहाती फसल की कल्पना करना भी कठिन है। 'खेती किसानी' स्तंभ में हमने जल संरक्षण और जल प्रबंधन से उत्तम फसल प्राप्त करने की जानकारी प्रकाशित की है। जल के उपयोग के साथ-साथ हमें जल संवर्धन और संग्रहण के बारे में भी सोचना चाहिए। जल स्रोतों की रिचार्जिंग करने के साथ ही उन्हें प्रदूषण से बचाना भी जरूरी है। 'उपाय' स्तंभ में हमने इसी जानकारी को प्रकाशित किया है और अंत में आपके पत्रों को 'आपकी बात' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित किया गया है। यह सम्पूर्ण अंक हमने जल संरक्षण और संवर्धन पर केन्द्रित किया है। अपेक्षा है आपके लिए उपयोगी साबित होगा।

(®PÉ´ÉÒ® ¸ÉÒ´ÉÉºiÉ´É)

पानी बचाने की पहल

अप्सु औषधम् - अप्सु भेषजम् - अथर्ववेद यह कहकर जल का गुणगान करता है कि जल में समस्त औषधियाँ हैं। इसी सोच-संदर्भ में उस पुरानी परंपरा का ध्यान करें जिसके तहत नदी पार करते समय उसमें सिक्का डालने की प्रथा है। प्राचीनकाल में सिक्का ताँबे का होता था। जल के संपर्क से ताँबे का आक्सीकरण (आक्सीडाइज़) हो जाता है। इसके सीधे निहितार्थ है कि जल का जो औषधि गुण हमने दोहन किया वह उसे लौटाकर उसे पुनः औषधियुक्त कर दें। वर्तमान में तो स्थिति यह है कि जल के गुण उसे लौटाकर जल-ऋण से उऋण होने के बदले हम जल का ऐसा निर्मम दोहन कर रहे हैं कि जल का स्तर रसातल से भी नीचे चला जा रहा है।

जलाभाव की भीषण स्थिति को देखते हुए मध्यप्रदेश में पानी बचाने की संवेदनशील पहल की गयी, इसमें समाज की सहभागिता केन्द्र में है। देश की कुल 14 बड़ी नदी-प्रणालियों में से चार यानी गंगा, नर्मदा, ताप्ती और माही मध्यप्रदेश में हैं। इसका सीधा आशय यह है कि हमारे प्रदेश में जो नदियाँ और उनकी सहायक नदियाँ हैं उनका पानी अंततः गंगा, नर्मदा, ताप्ती और माही में जाता है। नर्मदा, सोन, ताप्ती, माही, टोंस, केन, बेतवा, चंबल, धसान, पार्वती, क्षिप्रा, सिंध और उनकी सहायक नदियों की कुल लंबाई लगभग 17 हजार किलोमीटर है। इनमें से केवल पाँच नदियाँ नर्मदा (1312 किलोमीटर), चंबल (965 किलोमीटर), सोन (673 किलोमीटर), बेतवा (590 किलोमीटर) और सिंध (415 किलोमीटर) हमारे प्रदेश में लगभग चार हजार किलोमीटर लंबाई में बहती हैं। चूंकि इन तमाम नदियों से देश की मुख्य नदी-प्रणालियाँ संचालित हैं इसलिये एक प्रकृतिविद् ए.पी.एफ. हेमिल्टन ने मध्यप्रदेश को 'गार्जियन स्टेट' की संज्ञा दी थी। उनका स्पष्ट आशय था कि यदि देश के इस हृदयप्रदेश के प्रवाहमान और भूमिगत जलस्रोत प्रतिकूल रूप से प्रभावित हों तो उसका असर समूचे देश पर पड़ेगा।

लेकिन अब यह अवांछनीय स्थिति आ चुकी है। गर्मियों में हमारी अधिकांश बड़ी नदियों की धार टूट जाती है। भक्तों को याद होगा कि मई 2004 में कुंभ के अवसर पर क्षिप्रा को प्रवाहमान रखने के लिये उसमें गंभीर का जल छोड़ना पड़ा था। कुछ छोटी नदियां

ऐसी हैं कि उनमें वर्षाकाल में अल्पावधि के लिये इतना अधिक पानी आता है कि बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सौ किलोमीटर से कम बहने वाली छोटी-सी तवा नदी जो अंततः नर्मदा में मिलती है इसका जीता-जागता उदाहरण है। हमारी अधिकांश नदियों के पाटों में वर्षा और गर्मी में 10:1 का अंतर रहता है। जलाभाव की स्थिति यह है कि हमारे कुछ जिलों में तो पानी का आयात करना होता है। अधिकांश उत्तरी और पश्चिमी जिलों में जलाभाव की स्थिति है।

आज जब जल-जागृति पैदा की जा रही है तब हमें यह मनोमंथन करना चाहिये कि आखिर हमारे प्रदेश में पानी के इस अकाल की स्थिति क्यों और कैसे बनी है। जिस मालवा के बारे में कहा जाता था कि 'पग-पग रोटी डग-डग नीर/मालव-भूमि गहन गंभीर' वहाँ आज सूखे की स्थिति क्यों है? 'द फ़ारेस्ट्स ऑफ मध्यप्रदेश' में लिखा है कि कोई नदी तभी तक नदी है जब तक कि उसके जलग्रहण क्षेत्र वनाच्छादित रहते हैं। देश की अधिकांश नदी-प्रणालियों के जलग्रहण क्षेत्र मध्यप्रदेश में ही हैं और दुर्भाग्यवश ये वन वनस्पतिविहीन हो चुके हैं।

वृक्ष तो जल के थोक और खुदरा व्यापारी के समान हैं। सर्वमान्य सत्य है कि वृक्ष स्थानीय रूप से वर्षा को आकर्षित करते हैं। वृक्षों के वितान वर्षा के वेग को रोकते हैं। पुराणों में जो गंगावतरण की कथा है उसमें गंगा जी के वेग को शिवजी ने अपनी जटाओं से संयमित किया था। वृक्ष-वितान भी यही काम करते हैं। इसीलिये वृक्षों की वंदना उन्हें शिव की जटाओं की उपमा देकर की गई है :

नमो वृक्षेभ्यः, हरि केशेभ्यः।

वृक्ष-वितानों से गुज़रकर जो वर्षाजल भूमि पर गिरता है उसके प्रवाह-वेग को भूमि पर आच्छादित अनेक वनस्पतियाँ, सूखी पत्तियाँ और झाड़ियाँ रोकती हैं। वृक्षों की जड़ें इसी वर्षाजल का जमींदोज़ ज़खीरा बनाती हैं जो भूमिगत जलसंचार के माध्यम से कुओं, बावड़ियों और जलाशयों को जीवित रखता है। वाशिंगटन स्थित वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट के एक पूर्व अध्यक्ष और पर्यावरणविद् लीस्टर ब्राउन का कहना है संसार की सारी सभ्यता भूमि की उस ऊपरी नौ-इंची सतह पर निर्भर करती है जिसे वैज्ञानिक ह्यूमस कहते हैं। इसे बनने में तो सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं, लेकिन भूमिक्षरण के कारण यह कुछ ही मिनटों में बह जाती है। जब वनस्पतिविहीन भूमि पर वर्षा का जल गिरता और बहता है तो उसकी गति नियंत्रित करने के लिये ऊपर वृक्ष-वितान और नीचे झाड़ियाँ, घास, सूखी पत्तियाँ, जड़ों का जाल आदि न होने से वर्षा-जल का बहाव इतना तेज़

वैसा ही फिर हे वन-वासिनी
लहरों में घिर आओ।
गिरि चढ़ने से श्रांत पथिक को
फिर जलगीत सुनाओ।
कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

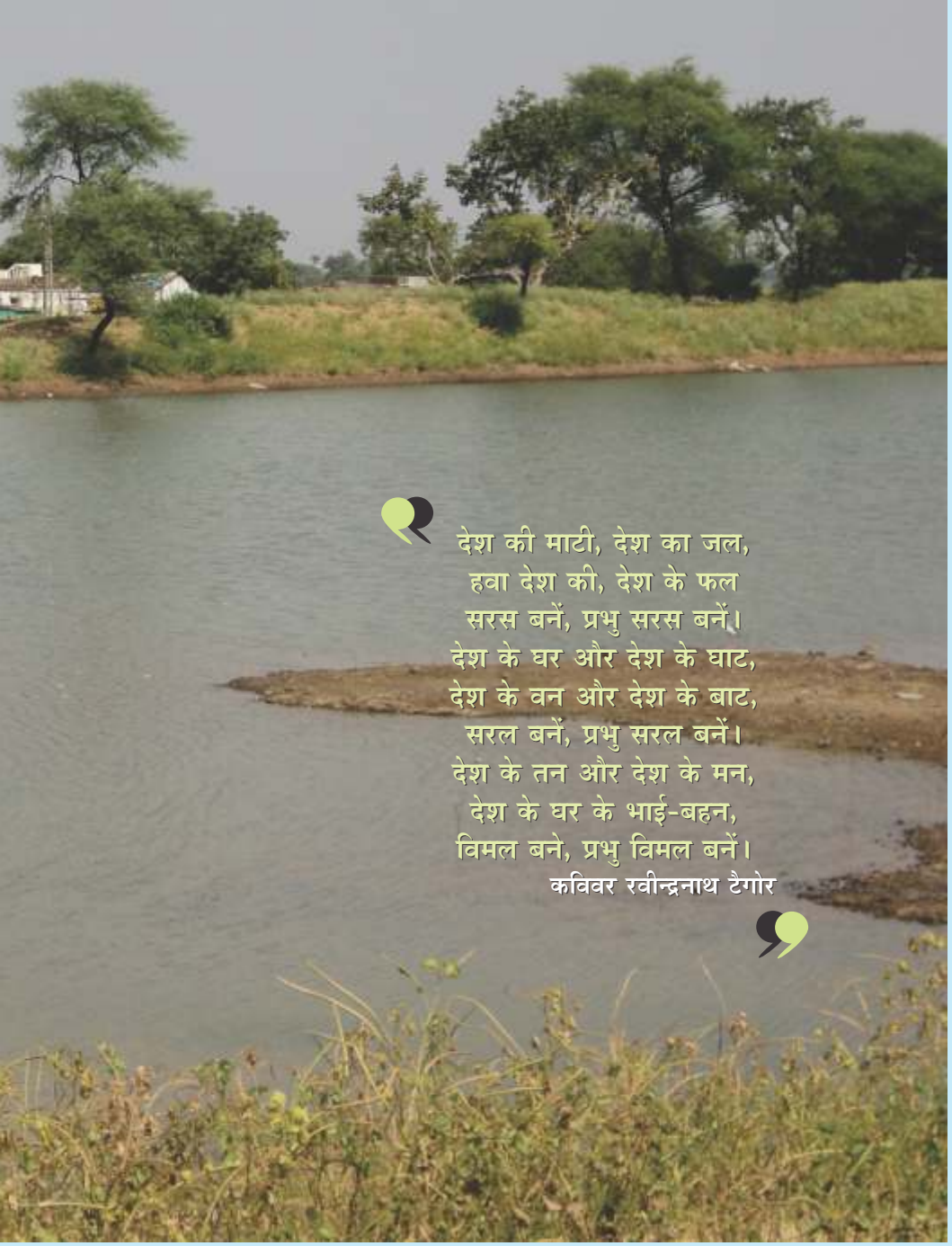

> देश की माटी, देश का जल,
> हवा देश की, देश के फल
> सरस बनें, प्रभु सरस बनें।
> देश के घर और देश के घाट,
> देश के वन और देश के बाट,
> सरल बनें, प्रभु सरल बनें।
> देश के तन और देश के मन,
> देश के घर के भाई-बहन,
> विमल बने, प्रभु विमल बनें।
>
> **कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर**

होता है कि वह ह्यूमस यानी ऊपरी उपजाऊ सतह को बहा ले जाता है। भूमि-क्षरण के इस विकराल रूप के जीते-जागते मॉडल हैं चंबल, सिंध और क्वारी नदियों के बीहड़। ज़ाहिर है कि वन और वनस्पतियों का कवच जल-संरक्षण करने के साथ-साथ भूमि-संरक्षण भी करता है।

इसके अभाव में वर्षा का जल जल-धाराओं के माध्यम से समुद्र में जाकर बेकार हो जाता है। यदि हम इस प्रकार बेकार जाने वाले जल और भूमि-क्षरण के कारण बहने वाली मिट्टी पर प्राइसटैग लगायें तो यह क्षति अरबों रुपयों की होगी। क्या हम 'रिसोर्स-इल्लिट्रेट' हैं?

पानी बचाने की मुहिम में प्रत्येक नागरिक को हाथ बंटाना चाहिये। दरअसल भूमि, जल और वन के अन्योन्याश्रित संबंधों को समझना जरूरी है।

● घनश्याम सक्सेना

भारतवासी जब तीर्थयात्रा के लिए जाता है, तब भी अधिकतर वह नदी के ही दर्शन करने के लिए जाता है। तीर्थ का मतलब है नदी का पैछल या घाट। नदी को देखते ही उसे इस बात का होश नहीं रहता कि जिस नदी में स्नान करके वह पवित्र होता है उसे अभिषेक की क्या आवश्यकता है? गंगा का ही पानी लेकर गंगा को अभिषेक किये बिना उसकी भक्ति को संतोष नहीं मिलता। सीता जी जब रामचंद्र जी के साथ वनवास के लिए निकल पड़ीं तब वे हर नदी को पार करते समय मनौती मनाती जाती थीं कि 'वनवास से सकुशल वापस लौटने पर हम तुम्हारा अभिषेक करेंगे।' मनुष्य जब मर जाता है, तब भी उसे वैतरणी नदी को पार करना पड़ता है। थोड़े में, जीवन और मृत्यु दोनों में आर्यों का जीवन नदी के साथ जुड़ा है।

उनकी मुख्य नदी तो है गंगा। वह केवल पृथ्वी पर ही नहीं, बल्कि स्वर्ग में भी बहती है और पाताल में भी बहती है। इसीलिए वे गंगा को त्रिपथगा कहते हैं।

पाप धोकर जीवन में आमूलाग्र परिवर्तन करना हो, तब भी मनुष्य नदी में ही जाता है और कमर तक पानी में खड़ा रहकर संकल्प करता है, तभी उसको विश्वास होता है कि अब उसका संकल्प पूरा होने वाला है। वेद काल के ऋषियों से लेकर व्यास, वाल्मीकि, शुक, कालिदास, भवभूति, क्षेमेन्द्र, जगन्नाथ तक किसी भी संस्कृत कवि को ले लीजिये, नदी को देखते ही उसकी प्रतिभा पूरे वेग से बहने लगती है। हमारी किसी भी भाषा की कविताएँ देख लीजिये, उनमें नदी के स्रोत अवश्य मिलेंगे और हिन्दुस्तान की भोली जनता के लोकगीतों में भी आपको नदी के वर्णन कम नहीं मिलेंगे।

नदियों के प्रति काका कालेलकर का भक्तिपूर्ण वन्देमातरम्

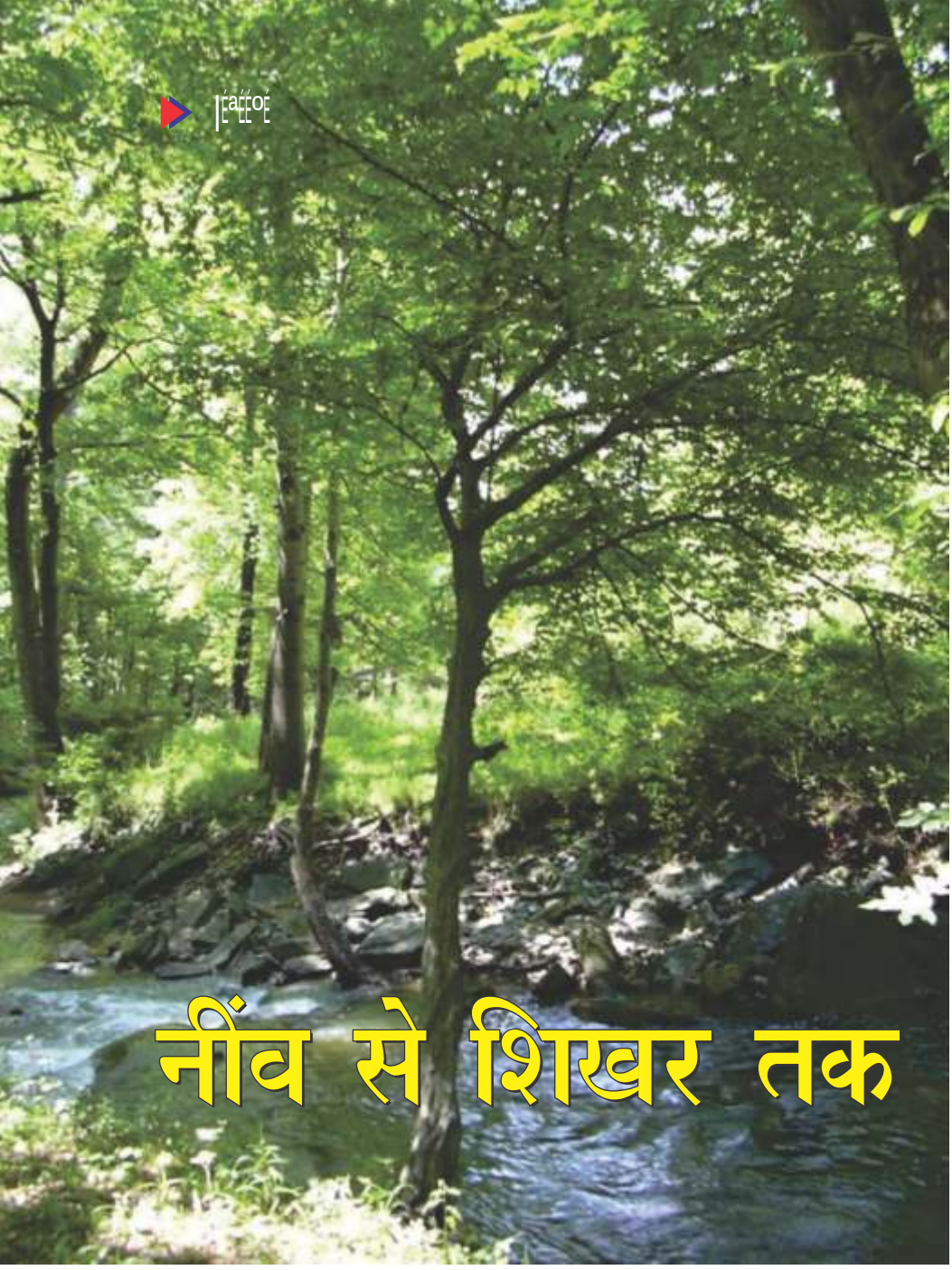

नींव से शिखर तक

आज अनपूछी ग्यारस है। देव उठ गए हैं। अब अच्छे-अच्छे काम करने के लिए किसी से कुछ पूछने की, मुहूर्त दिखवाने की जरूरत नहीं है। फिर भी सब लोग मिल-जुल रहे हैं, सब से पूछ रहे हैं। एक तालाब जो बनने वाला है। ....

पाठकों को लगेगा कि अब उन्हें एक तालाब के बनने का - पाल बनने से लेकर पानी भरने तक का पूरा विवरण मिलने वाला है। हम खुद ऐसा विवरण खोजते रहे पर हमें वह कहीं मिल नहीं पाया। जहां सदियों से तालाब बनते रहे हैं, हजारों की संख्या में बने हैं- वहां तालाब बनाने का पूरा विवरण न होना शुरू में अटपटा लग सकता है, पर यही सबसे सहज स्थिति है। 'तालाब कैसे बनाएं' के बदले चारों तरफ 'तालाब ऐसे बनाएं' का चलन चलता था। फिर भी छोटे-छोटे टुकड़े जोड़ें तो तालाब बनाने का एक सुंदर न सही, कामचलाऊ चित्र तो सामने आ ही सकता है।

... अनपूछी ग्यारस है। अब क्या पूछना है। सारी बातचीत तो पहले हो ही चुकी है। तालाब की जगह भी तय हो चुकी है। तय करने वालों की आंखों में न जाने कितनी बरसातें उतर चुकी हैं। इसलिए वहां ऐसे सवाल नहीं उठते कि पानी कहां से आता है, कितना पानी आता है, उसका कितना भाग कहां पर रोका जा सकता है। ये सवाल नहीं हैं, बातें हैं सीधी-सादी, उनकी हथेलियों पर रखी। इन्हीं में से कुछ आंखों ने इससे पहले भी कई तालाब खोदे हैं। और इन्हीं में से कुछ आंखें ऐसी हैं जो पीढ़ियों से यही काम करती आ रही हैं।

यों तो दसों दिशाएं खुली हैं, तालाब बनाने के लिए, फिर भी जगह का चुनाव करते समय कई बातों का ध्यान रखा गया है। गोचर की तरफ है यह जगह। ढाल है, निचला क्षेत्र है। जहां से पानी आएगा, वहां की जमीन मुरुम वाली है। उस तरफ शौच आदि के लिए भी लोग नहीं जाते हैं। मरे जानवरों की खाल वगैरह निकालने की जगह यानी हड़वाड़ा भी इस तरफ नहीं है।

अभ्यास से अभ्यास बढ़ता है। अभ्यस्त आंखें बातचीत में सुनी-चुनी गई जगह को एक बार देख भी लेती हैं। यहां पहुंच कर आगौर, जहां से पानी आएगा, उसकी साफ-सफाई, सुरक्षा को पक्का कर लिया जाता है। आगर, जहां पानी आएगा, उसका स्वभाव परख लिया जाता है। पाल कितनी ऊंची होगी, कितनी चौड़ी होगी, कहां से कहां तक बंधेगी तथा तालाब में पानी पूरा भरने पर उसे बचाने के लिए कहां पर अपरा बनेगी, इसका भी अंदाज ले लिया गया है।

सब लोग इकट्ठे हो गए हैं। अब देर काहे की। चमचमाती थाली सजी है। सूरज की किरणें उसे और चमका रही हैं। जल से पूर्ण लोटा है। रोली, मौली, हल्दी, अक्षत के साथ रखा है लाल मिट्टी का एक पवित्र डला। भूमि और जल की स्तुति के श्लोक धीरे-धीरे लहरों में बदल रहे हैं।

वरुण देवता का स्मरण है। तालाब कहीं भी खुद रहा हो, देश के एक कोने से दूसरे कोने

तक की नदियों को पुकारा जा रहा है। श्लोकों की लहरें थमती हैं, मिट्टी में फावड़ों के टकराने की खड़खड़ाहट से। पांच लोग पांच परात मिट्टी खोदते हैं, दस हाथ परातों को उठा कर पाल पर डालते हैं। यहीं बंधेगी पाल। गुड़ बंट जाता है। मुहूर्त साध लिया है। आंखों में बसा तालाब का पूरा चित्र फावड़े से निशान लगाकर जमीन पर उतार लिया गया है। कहां से मिट्टी निकलेगी और कहां-कहां डाली जाएगी, पाल से कितनी दूरी पर खुदाई होगी ताकि पाल के ठीक नीचे इतनी गहराई न हो जाए कि पाल पानी के दबाव से कमजोर होने लगे। ...

अनपूछी ग्यारस को इतना तो हो ही जाता था। लेकिन किसी कारण उस दिन काम शुरू नहीं हो पाए तो फिर मुहूर्त पूछा जाता था, नहीं तो खुद निकाला जाता था। गांव और शहर में घर-घर में मिलने वाले पंचांग और कई बातों के साथ कुआँ, बावड़ी और तालाब बनाने का मुहूर्त आज भी समझाते हैं : "हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा, शतभिषा, मघा, रोहिणी, पुष्य, मृगशिरा, पूष नक्षत्रों में चंद्रवार, बुधवार, बृहस्पतिवार तथा शुक्रवार को कार्य प्रारंभ करें। परंतु तिथि 4, 9 और 14 का त्याग करें। शुभ लगनों में गुरु और बुध बली हो, पाप ग्रह निर्बल हो, शुक्र का चन्द्रमा जलचर राशिगत लगन व चतुर्थ हो, गुरु शुक्र अस्त न हो, भद्रा न हो तो खुदवाना शुभ है।"

आज हममें से ज्यादा लोगों को इस विवरण में से दिनों के कुछ नाम भर समझ में आ पाएँगे, पर आज भी समाज के एक बड़े भाग के मन की घड़ी इसी घड़ी से मिलती है। कुछ पहले तक तो पूरा समाज इसी घड़ी से चलता था।

... घड़ी साध ली गई है। लोग वापस लौट रहे हैं। अब एक दो दिन बाद जब भी सबको सुविधा होगी, फिर से काम शुरू होगा।

अभ्यस्त निगाहें इस बीच पलक नहीं झपकतीं। कितना बड़ा है तालाब, काम कितना है, कितने लोग लगेंगे, कितन औज़ार, कितने मन मिट्टी खुदेगी, पाल पर कैसे डलेगी मिट्टी? तसलों से, बहंगी, लग्गे से ढोई जाएगी या गधों की भी जरूरत पड़ेगी? प्रश्न लहरों की तरह उठते हैं। कितना काम कच्चा है, मिट्टी का है, कितना है पक्का, चूने का, पत्थर का। मिट्टी का कच्चा काम बिलकुल पक्का करना है और पत्थर, चूने का पक्का काम कच्चा न रह जाए। प्रश्नों की लहरें उठती हैं और अभ्यस्त मन की गहराई में शांत होती जाती हैं। सैकड़ों मन मिट्टी का बेहद वजनी काम है। बहते पानी को रुकने के लिए मनाना है। पानी से, हां आग से खेलना है।

डुगडुगी बजती है। गांव तालाब की जगह पर जमा होता है। तालाब पर काम अमानी में चलेगा। अमानी यानी सब लोग एक साथ काम पर आएंगे, एक साथ वापस घर लौटेंगे। सैकड़ों हाथ मिट्टी काटते हैं। सैकड़ों हाथ पाल पर मिट्टी डालते हैं। धीरे-धीरे पहला आसार

"जहां सदियों से तालाब बनते रहे हैं, हजारों की संख्या में बने हैं - वहां तालाब बनाने का पूरा विवरण न होना शुरू में अटपटा लग सकता है, पर यही सबसे सहज स्थिति है।"

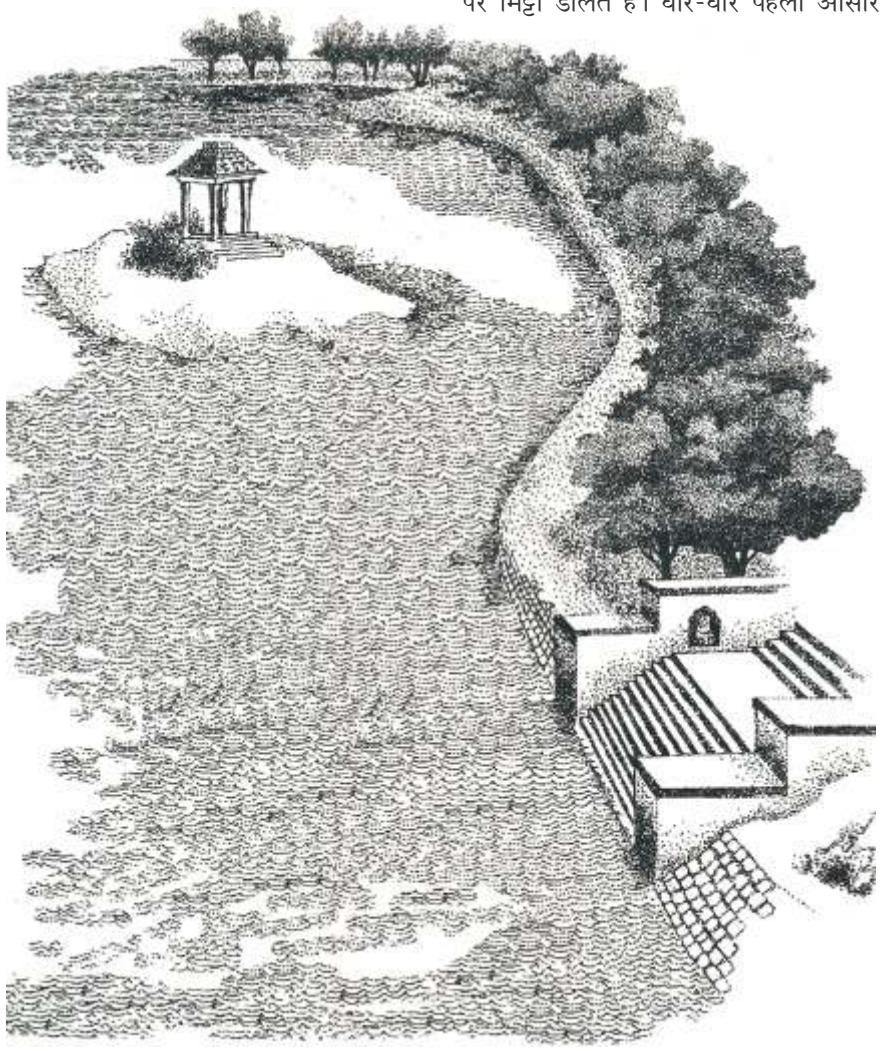

पूरा होता है, एक स्तर उभर कर दिखता है। फिर उसकी दबाई शुरू होती है। दबाने का काम नंदी कर रहे हैं। चार नुकीले खुरों पर बैल का पूरा वजन पड़ता है। पहला आसार पूरा हुआ तो उस पर मिट्टी की दूसरी तह डलनी शुरू होती है। हरेक आसार पर पानी सींचते हैं, बैल चलाते हैं। सैंकड़ों हाथ तत्परता से चलते रहते हैं, आसार बहुत धीरज के साथ धीरे-धीरे उठते जाते हैं।

अब तक जो कुदाल की एक अस्पष्ट रेखा थी, अब वह मिट्टी की पट्टी बन गई है। कहीं वह बिलकुल सीधी है तो कहीं यह बल खा रही है, आगौर से आने वाला पानी जहां पाल पर जोरदार बल आजमा सकता है, वहीं पर पाल में भी बल दिया गया है। इसे 'कोहनी' भी कहा जाता है। पाल यहां ठीक हमारी कोहनी की तरह मुड़ जाती है। जगह गांव के पास ही है तो भोजन करने लोग घर जाते हैं। जगह दूर हुई तो भोजन भी वहीं पर। पर पूरे दिन गुड़ मिला मीठा पानी सबको वहीं मिलता है। पानी का काम प्रेम का काम है, पुण्य का काम है, इसमें अमृत जैसा मीठा पानी ही पिलाना है, तभी अमृत जैसा सरोवर बनेगा।

इस अमृतसर की रक्षा करेगी पाल। वह तालाब की पालक है। पाल नीचे कितनी चौड़ी होगी, कितनी ऊपर उठेगी और ऊपर की चौड़ाई कितनी होगी - ऐसे प्रश्न गणित या विज्ञान का बोझ नहीं बढ़ाते। अभ्यस्त आंखों के सहज गणित को कोई नापना ही चाहे तो नींव की चौड़ाई से ऊंचाई होगी आधी और पूरी बन जाने पर ऊपर की चौड़ाई कुल ऊंचाई से आधी होगी। मिट्टी का कच्चा काम पूरा हो रहा है। अब पक्के काम की बारी है। चुनकरों ने चूने को बुझा लिया है। गरट लग गई है। अब गारा तैयार हो रहा है। सिलावट पत्थर की टकाई में व्यस्त हो गए हैं। रक्षा करने वाली पाल की भी रक्षा करने के लिए नेष्टा बनाया जाएगा। नेष्टा यानी वह जगह जहां से तालाब का अतिरिक्त पानी पाल को नुकसान पहुंचाए बिना बह जाएगा। कभी यह शब्द 'निसृष्ट' या 'निस्तरण' या 'निस्तार' रहा होगा। तालाब बनाने वालों की जीभ से कटते-कटते यह घिस कर 'नेष्टा' के रूप में इतना मजबूत हो गया कि पिछले कुछ सैंकड़ों वर्षों से इसकी एक भी मात्रा टूट नहीं पाई है।

नेष्टा पाल की ऊंचाई से थोड़ा नीचा होगा, तभी तो पाल को तोड़ने से पहले ही पानी को बहा सकेगा। जमीन से इसकी ऊंचाई, पाल की ऊंचाई के अनुपात में तय होगी। अनुपात होगा कोई 10 और 7 हाथ का।

पाल और नेष्टा का काम पूरा हुआ और इस तरह बन गया तालाब का आगर। आगौर का सारा पानी आगर में सिमट कर आएगा। अभ्यस्त आंखें एक बार फिर आगौर और आगर को तौल कर देख लेती हैं। आगर की क्षमता आगौर से आने वाले पानी से कहीं अधिक तो नहीं, कम तो नहीं। उत्तर हां में नहीं आता।

आखिरी बार डुगडुगी पिट रही है। काम तो पूरा हो गया है पर आज फिर सभी लोग इकट्ठे होंगे, तालब की पाल पर। अनपूछी ग्यारस को जो संकल्प लिया था, वह आज पूरा हुआ है। बस आगौर में स्तंभ लगना और पाल पर घटोइया देवता की प्राण प्रतिष्ठा होना बाकी है। आगर के स्तंभ पर गणेशजी बिराजे हैं और नीचे हैं सर्पराज। घटोइया बाबा घाट पर बैठ कर पूरे तालाब की रक्षा करेंगे। आज सबका भोजन होगा। सुंदर मजबूत पाल से घिरा तालाब दूर से एक बड़ी थाली की तरह ही लग रहा है। जिन अनाम लोगों ने इसे बनाया है, आज वे प्रसाद बांट कर इसे एक सुंदर-सा नाम भी देंगे। और यह नाम किसी कागज पर नहीं, लोगों के मन पर लिखा जाएगा।

लेकिन नाम के साथ काम खत्म नहीं हो जाता है। जैसे ही हथिया नक्षत्र उगेगा, पानी का पहला झला गिरेगा, सब लोग फिर तालाब पर जमा होंगे। अभ्यस्त आंखें आज ही तो कसौटी पर चढ़ेंगी। लोग कुदाल, फावड़े, बांस और लाठी लेकर पाल पर घूम रहे हैं। खूब जुगत से एक-एक आसार उठी पाल भी पहले झले का पानी पिए बिना मजबूत नहीं होगी। हर कहीं से पानी धंस सकता है। दरारें पड़ सकती हैं। चूहों के बिल बनने में भी कितनी देरी लगती है भला! पाल पर चलते हुए लोग बांसों से, लाठियों से इन छेदों को दबा-दबा कर भर रहे हैं। कल जिस तरह पाल धीरे-धीरे उठ रही थी, आज उसी तरह आगर में पानी उठ रहा है। आज वह पूरे आगौर से सिमट-सिमट कर आ रहा है :

सिमट-सिमट जल भरहिं तलावा।
जिमी सदगुण सज्जन पहिं आवा।।

अनाम हाथों की मनुहार पानी ने स्वीकार कर ली है।

● अनुपम मिश्र

यदि पानी नहीं बचा तो जीवन कैसे बचेगा

जीवन इंसान का हो अथवा प्रकृति में किसी भी प्राणी का, इसके लिए पानी बेहद जरूरी है। कहते हैं बिना भोजन के इंसान चालीस दिनों तक जिन्दा रह सकता है लेकिन पानी के बिना चालीस घंटे भी मुश्किल होंगे। लेकिन विकास के आधुनिक दौर ने जीवन की नई शैली ने सबसे ज्यादा पानी को प्रभावित किया है। पानी की जरूरतों ने व्यापारियों की स्वर्णिम मौका दिया अब पूरी दुनिया के व्यापारी इस बात पर सबसे ज्यादा शोध कर रहे हैं कि पानी के आधार पर पैसा कैसे कमाया जा सकता है। यह अनुसंधान केवल पानी से बिजली बनाने या बोतल बंद पानी बेचने तक सीमित नहीं है बल्कि पानी फिल्टर प्लांट, फिल्टर के घरेलू उपकरण, ड्रिलिंग मशीनों का निर्माण, पानी परिवहन के टेंकर, पाइप लाइनें, नदी तालाब को साफ करने की मशीनें बनाने तक की योजनाएं शामिल हैं। यदि विकास की दौड़ और पानी की चिंता केवल संगोष्ठियों, किताबों तक ही सीमित रही तो आगे आने वाले दस सालों में पानी की किल्लत इतनी भयावह होगी कि प्यास से मरने वालों की खबरों से अखबार भरे रहेंगे। तब शायद इंसान को समझ आयेगा कि पानी से पैसा तो बनाया जा सकता है लेकिन पैसे से पानी नहीं बनाया जा सकता। पानी को यदि बचाया जा सकता है तो जागरूकता से और योजनाओं में व्यवहारिकता का समावेश करके। पानी को लेकर एक अजीब विरोधाभास दिखाई दे रहा है। एक तरफ पानी का परिमाण बढ़ रहा है और दूसरी तरफ पीने का संकट। यदि वक्त की रफ्तार ऐसी ही रही तो वह दिन दूर नहीं जब इंसानों की मौत प्यास के कारण होने लगेगी। यदि ग्लेशियर पिघल रहे हैं, समन्दर का जल स्तर बढ़ रहा है तो इसका मतलब यही तो है कि पानी बढ़ रहा है। यदि हम दुनिया के दूसरे देशों की बात न भी करें और केवल भारत की चर्चा करें तो हम पायेंगे कि हिमालय पर बर्फ तेजी से पिघल रही है और उड़ीसा एवं आंध्र की अनेक तटीय बस्तियों के भविष्य में डूबने का खतरा उत्पन्न हो गया है। इसे नियति की करवट कहें कि मध्यप्रदेश के मालवा का जो क्षेत्र कभी 'डग-डग रोटी और पग-पग नीर' की लोकोक्ति के लिए जाना जाता था अब वहां के गांवों में पीने के पानी का संकट उत्पन्न हो गया है। भारत के लिए यह प्रकृति का वरदान है कि यहां जितनी बरसात होती है उतनी अमेरिका में भी नहीं होती फिर भी भारत में पीने के लिए भी पानी की किल्लत है लेकिन अमेरिका में नहीं। इसका कारण भारत में पानी का प्रबंधन दोषपूर्ण है। अमेरिका में नहीं। वहां सिद्धांत और व्यवहारिक जरूरतें कभी नहीं बदलतीं। चाहे सरकार बदलें अथवा सरकार चलाने के

लिए जनादेश। मध्यप्रदेश के लिए यह अच्छी बात है कि यहां लगभग बीस सालों से पानी बचाने और उसे व्यवस्थित करने के विचारों में ज्यादा परिवर्तन नहीं आया। जल स्त्रोतों का संरक्षण, प्राकृतिक जल के सद्‌प्रयोग या गिरते हुए भूमिगत जल को बचाने के उपायों में भले ही कुछ तरीका बदला गया हो लेकिन उसके मूलभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया। बल्कि नदियों को एक दूसरे से जोड़ने से भविष्य में क्रांतिकारी परिणामों की उम्मीद बन गई है।

पानी की समस्या विकास की दिशा, जरूरतों और संसाधनों के प्राकृतिक स्वरूप के बीच तालमेल बिगड़ जाने के कारण उत्पन्न हुई है। देश और प्रदेश दोनों में प्रकृति इतना पानी प्रतिवर्ष देती है जो प्राणियों की तमाम जरूरतों को पूरा कर सकती है वह भी भूमिगत जल को बिना किसी नुकसान के लेकिन प्रतिवर्ष लगभग 60 प्रतिशत बेकार बहकर समन्दर में जा रहा है और पानी की जरूरतें जिसमें पीने एवं अन्य तमाम उपयोग शामिल हैं, लगभग 68 प्रतिशत तक भूमिगत जल पर निर्भर हो गया है इसमें पीने के लिए, सिंचाई के लिए, कारखानों के उपयोग की जरूरतें भी शामिल हैं। पूरे सालभर तक पानी से भरी रहने वाली नदियां और क्षेत्रीय तालाब या तो सूखने लगे अथवा इतने प्रदूषित हो गए कि अब उनके जल को पीने के लिए इस्तेमाल करना तो दूर स्नान करना भी बीमारियों को आमंत्रित करने जैसा हो गया है। जमीन का समतलीकरण बेशक आज के विकास के लिए जरूरी है लेकिन इससे वर्षा जल का ठहराव कम होता है। उसका बहाव कमजोर रहता है जिससे पानी धरती के भीतर रिसकर सतही जल को समृद्ध करता था। बहाव की कमजोर गति न केवल वर्षा जल को रोकती है बल्कि अन्य मौसम में उपयोग किए गए पानी को नालों में या नदी में जाने से भी रोकती थी उबड़-खाबड़ या गड्ढों वाली खुली धरती इंसान को असुविधा तो दे सकती है लेकिन पानी के बचाव के लिए यह सबसे कारगर तरीका है जो विकास के इस आधुनिक दौर में खत्म हो गया है। खेतों की मेढ़ें खत्म हो गईं। चरनोई की जमीनों पर कालोनियां बन गईं। इन तमाम समस्याओं का समाधान एक-एक व्यक्ति की जागरूकता और सक्रियता से होगा। यह ठीक है कि हम परिस्थिति नहीं बदल सकते लेकिन अपने स्तर पर कोई ऐसी शुरुआत की जा सकती है जो अनुकरणीय हो। पानी को बचाने का काम व्यक्तिगत स्तर से ही होगा। संस्थागत स्तर से पंचायतों के माध्यम से किया जाना चाहिए। पंचायतों को पानी रोकने का एक अभियान चलाना होगा। घर का पानी घर में, खेत का पानी खेत में, और गांव का पानी गांव में। यह कार्य युद्ध स्तर पर किया जाए। कुछ वर्ष पहले भोपाल के तालाब और अन्य नदियों के गहरीकरण और स्वच्छता को लेकर गंभीर प्रयास किये गये थे। केवल एक जुनून था कि तालाब या नदी की सफाई कैसे हो। ठीक उसी तर्ज प्रयत्न पर किया जाये कि गांव के तालाबों की सफाई और गांव में पानी के बहने वाले रास्तों का उस तालाब से संपर्क ताकि पानी वहीं एकत्र हो। ठीक इसी तरह खेत का पानी खेत में। खेत की ढलान वाले हिस्से में खेत के कुल रकबे का मुश्किल से दो से तीन प्रतिशत हिस्से को तालाबनुमा बनाया जा सकता है। इससे तीन फायदे होंगे। एक तो खेत में नमी बढ़ेगी। दूसरे सिंचाई के लिए एक या दो पानी खुद का मिल जायेगा और तीसरा सबसे महत्वपूर्ण खेत की उत्पादकता बढ़ाने वाला 'रेशा' खेत से बाहर बहकर नहीं जायेगा। वह पानी के साथ इस 'खेत तालाब' में जमा होगा जिसके सूखे जाने पर खेत में दोबारा डाला जाए। इससे प्रतिवर्ष इस तालाब की सफाई भी होगी और दूसरे खेत की उर्वरक क्षमता नहीं घटेगी। यदि पंचायतें जागरूकता अभियान चलाकर किसानों को इसके लिए तैयार करती हैं तो रोजगार के नए अवसरों का भी सृजन होगा। तीसरी घर का पानी घर में। घरों के भीतर बरसाती जल का निवास बनाकर उसे हैंडपंप से जोड़ा जा सकता है अथवा घर में 15-20 फीट गहरा कुआं खोदा जा सकता है जिसमें घर का सारा पानी जमा हो। बस इस कुएं को कुछ ऐसा सुरक्षित किया जाए जिससे दुर्घटनाओं का खतरा न रहे। बरसात के पानी के अतिरिक्त आजकल गांवों मे नल-जल योजनाएं क्रियान्वित हैं। इस योजना से विस्तारित जल के उपयोग करने का भी विचार बनना चाहिए। अक्सर देखा जाता है कि गांवों में पानी की नालियों के अवरुद्ध होने के कारण रास्तों में कठिनाई होती है और बीमारी पैदा करने वाले मच्छर आदि पैदा होते हैं सो अलग। पंचायतों को चाहिए कि वे नाली साफ रखें और इस तमाम विस्तारित जल को संग्रह करने के लिए भी कोई तालाब आदि का निर्माण करें तथा 'रिसायक्लिंग' पद्धति से इस पानी के उपयोगिता का विचार होना चाहिए। इससे स्थानीय जरूरतें तो पूरी होंगी और वैश्विक स्तर पर जल संरक्षण योजना में योगदान होगा सो अलग।

● **रमेश शर्मा**

वेदों में जल का महत्व

विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद, जो कि पाँच हजार वर्ष पूर्व के माने गये हैं, में जल की देवता के रूप में प्रार्थना की गई है और यज्ञ का हव्य ग्रहण करने के लिए उनका आव्हान किया गया है। वेदों में इन्द्र, अग्नि, वायु, पृथ्वी एवं वरुण के साथ ही जल की स्तुति में सहस्त्रादिक ऋचाएँ आख्यापित हैं।

ऋग्वेद में जल को पालनकर्ता कहा गया है तथा यज्ञ-हवि अर्पित की गई है। जीवन की रक्षा करने वाले देव के रूप में जल की प्रार्थना इस प्रकार की गई है -

‘समुद्र ज्येष्ठा सलिलस्य मध्यात पुनाना
यन्त्यनिविशमानाः।
इन्द्रा या वज्री वृषभो रराद ता आपो
देवीरिह मामवन्तु।।’

(ऋग्वेद 7:49:1)

अर्थात् जिन जलों से समुद्र का विस्तार है, वह जल प्रवाहयुक्त है। जल देवता अन्तरिक्ष से आते हैं। इन्द्र ने जिन्हें मुक्त किया वे जल हमारे रक्षक हों। जल सभी का प्राणतत्व है, उसका उद्‌गम स्थल जो भी हो वे वंदनीय हैं। ऋषि गण प्रार्थना में कहते हैं -

‘या आपोदिव्य उत वा स्त्रवान्त खनित्रिया
उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो
देवीरिह मामवन्तु।।’

(ऋग्वेद 7:49:2)

अर्थ है, कि अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले जल, नदी में प्रवाहित या कूप रूप में खोदकर निकाले गये जल और समुद्र की ओर जाते हुए जल यह सब हमारे रक्षक हों।

जलों के स्वामी वरुण यमलोक में विचरण करते हैं और वे प्रकाशयुक्त रस से सम्पन्न हैं, ऐसा जल हमारी रक्षा करे। जल में देवों का निवास है -

‘यासु राजा वरुणो या सोमो विश्वेदेवा
यासूर्ज मदन्तति।
वैश्वानरो यास्वाग्निः प्रविष्टस्ता आपो
देवीरिह ममवन्तु।।’

अर्थात् जिन जलों में वरुण और सोम निवास करते हैं उनसे और अन्न से विश्वेदेवा प्रसन्न होते हैं और जिनमें वैश्वनार अग्नि का निवास है, वे जल हमारे रक्षक हों।

वेदों में जल प्रवाहिनी नदियों की महिमा का बखान किया गया है। ऋग्वेद के मंडल दो सूक्त अट्ठाईस की ऋचा चार में ऋषि कहते हैं कि ‘विश्व को धारण करने वाले अदिति-वरुण जल की रचना करते हैं और उन्हीं की महिमा से नदियाँ बहती हैं। ये सदा चलती रहती हैं और पीछे की ओर नहीं लौटतीं। नदियाँ वेग सहित पृथ्वी पर आती हैं, जो जीवन को पल्लवित करती हैं।’

एक ऋचा में कहा गया है कि -

‘आ धनेवः पयसा तूणयर्था अमर्धन्तीरूप
नो यन्तु मध्वा।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो
जरिता जोहवीति।।’

(ऋग्वेद 5:43:1)

जिसका अर्थ है कि वेग से बहने वाली नदियाँ मधुर जल के सहित निर्बाध गति से हमारे पास आएँ। अत्यंत प्रीतिवाले स्तोता श्रेष्ठ ऐश्वर्य के लिए सुख के कारणभूत-सप्त महानदियों को आहूत करें। ऋग्वेद के मंडल सात सूक्त पचास की ऋचा चार में प्रार्थना है कि- ‘प्रवत देश, निम्न देश तथा उन्नत देश में जो नदियाँ बहती हैं और जिनसे जल के द्वारा लोगों की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, वे संसार की उपकारी नदियाँ इसके शिपद रोग को दूर करने की कृपा करें। वे नदियाँ हमें हानि न पहुँचाएँ। इसका अभिप्राय यह भी है कि अतिवृष्टि, बाढ़ व तेज प्रवाह से किसी की हानि नहीं हो ऐसी कृपा प्राप्त करने हेतु प्रार्थना की गई है।’

वेदों में जल का औषधि तत्व के रूप में वर्णन किया गया है। जल जीवन को स्वस्थ, निरोगी व ऊर्जावान बनाये रखता है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के तेईसवें सूक्त की बीसवीं ऋचा में सोम के कथनानुसार जल की वह औषधि तत्व है, जो सर्वसुखदाता और आरोग्य देने वाला है। जल की यह प्रार्थना अद्‌भुत है-

‘आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।
ज्योक् च सूर्च दृशे।।
इन्द्रमापः प्रवहतयत किं च दुरितं मयि।
यद् वाहमभि दुद्रोह यद् वा शेष
उतान्तृतम्।।’

(ऋग्वेद 1:23:21-22)

अर्थात् हे जलो ! चिरकाल तक सूर्यदर्शन के निमित्तः निरोग रहने के लिए शरीर-रक्षक औषधि को मेरी देह में स्थित करो। मुझमें स्थित पाप को बहा दो। मेरे द्रोह-भाव, अपगंध

और मिथ्याचरण को प्रताड़ित करो।

अथर्ववेद में जल को श्रेष्ठ औषधियुक्त कहा गया है। जो समस्त व्याधियों का निवारण करता है -

'ईशाना वार्याण क्षयंतीश्चर्षणीनाम्।
अपो याचामि भेषजम्।।'

(अथर्ववेद 1:5:4)

अथर्ववेद में वर्णित है कि जल चेहरे का सौंदर्य तथा कोमलता और क्रान्ति बढ़ाने में औषध-रूप है। भोजन के पाचन में अधिक जल पीना लाभदायक है -

'आपो भद्रा घृतामिदाय आसन्नग्नीषों मेरे
ब्रिभ्रत्याय इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचकामरंगम आ मा प्राणेन
सह वर्चसा गमेत्।।'

(अथर्ववेद 3:13:5)

अर्थ है, कि जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है तथा वही मधुरता भरी जलधाराओं का स्रोत भी है। भोजन के पचाने में उपयोगी तीव्र रस है। प्राण, क्रांति, बल और पौरुष देने वाला, अमरता की ओर ले जाने वाला मूलतत्व है। अथर्ववेद के काण्ड तीन के सूक्त एक की ऋचा छः में कहा गया है कि जल से ही देखने-सुनने एवं बोलने की शक्ति प्राप्त होती है।

जल के अमृत तत्व के कारण ऋषिगण प्रार्थना में इसके सेवन की आकांक्षा व्यक्त करते हैं -

'तं वो वयं शुचि मरि प्रमद्य घृतप्रुषं
मधुमन्तं वनेम्।।'

हे जल देवता! अध्वर्युओं द्वारा इन्द्र के पान योग्य जो सोम रस निष्पन्न किया गया है उसका हम भी सेवन करें।

वेदों में लिखा गया है कि मकान के पास ही शुद्ध जल से भरा जलाशय होना चाहिये। जल की शुद्धता पर अधिक जोर दिया गया है। इस संबंध में ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में अनेक ऋचाएँ विद्यमान हैं -

'शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरमिस्रवन्तुनः।'

(ऋग्वेद 10:9:4)

अर्थात् सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा रक्षा के लिए कल्याणकारी हो। जल हम सब पर सुख-समृद्धि की वर्षा करे। शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घायु प्रदान करता है तथा यह कल्याणकारी है। ऋषिगण कहते हैं-

'इमा आपः प्र भराम्यक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्र सीमाम्यमृतेन सहाग्निगा।।'

(अथर्ववेद 3:12:9)

अर्थ है, कि अच्छे प्रकार से रोगरहित इस जल को मैं लाता हूँ। शुद्ध जलपान करने से मृत्यु से बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि के सहित घरों में आकर अच्छी तरह बैठता हूँ।

ऋग्वेद के दसवें मंडल के नौवें सूक्त की तीसरी ऋचा में कृषि कर्म के लिए जल का महत्व बताया गया है। किसानों के नेत्र जल के लिए वर्षा ऋतु में बादलों पर ही लगे रहते हैं। ऋषि कहते हैं कि हे जल! तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं अन्न आदि पदार्थ निर्भर हैं। जल का महत्व स्थापित करते हुए ऋग्वेद के षष्ठम मंडल के सत्तरवें सूक्त में कहा गया है कि - 'द्यवापृथिवी जल द्वारा आच्छादित है।' इसीलिए प्रथम मंडल तेईसवें सूक्त की अठारहवीं ऋचा में कहा गया है कि 'जिन जलों को हमारी गायें पीती हैं उसे हवि देनी है।' पंचम मंडल में पर्जन्यदेव की स्तुति में कहा गया है कि - पर्जन्यदेव मेघों को अन्तरिक्ष में एकत्र करते हैं और जलवृष्टि हेतु प्रेरित करते हैं। ऋषिगण जल द्वारा पृथ्वी व आकाश भिगो देने की कामना करते हैं जिसमें गौओं को पीने के लिए मधुर जल की कमी न रहे, सभी जीवों को जल प्राप्त हो और वनस्पतियाँ गर्भवती बनें। यजुर्वेद के अध्याय नौ में कहा गया है कि -

'अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपायुत
प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः।'

(अध्याय 9:6)

अर्थात् जलों में अमृत है और जलों में ही आरोग्यदायिनी तथा पुष्टि देने वाली औषधियाँ हैं।

यजुर्वेद में समुद्र के जल को राष्ट्रदाता कहा गया है और उसकी आराधना की गई है, 'हे जलो! तुम राष्ट्रदाता हो मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो।' इसका सीधा-सा अभिप्राय यह है कि जहां जल है वहाँ व्यक्ति है, वनस्पति है, जीवन है, समाज है और राष्ट्र है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋषि-मुनियों ने पाँच हजार वर्ष पूर्व ही वेदों में मानव जीवन के कल्याण के लिये जल के महात्म्य को आख्यापित करते हुए जल की आराधना व रक्षा के लिए समाज को सचेत किया है। जिसे हम ग्रहण कर पालन करते तो शायद आज मानवता विनाश के कगार पर नहीं पहुंचती। सारतत्व यही है कि वेदों में वर्णित जल के महात्म्य को हम पहचानें और प्रेरणा ग्रहण कर जल के संरक्षण व संवर्धन का कार्य कर मानव संस्कृति को विनाश से बचाएँ।

जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु ...

लोक संस्कारों में वरुणदेव की आराधना, अनुष्ठानों में 'गंगे यमुने च गोदावरी' का आव्हान, तीर्थ यात्रा में गंगा, यमुना, नर्मदा के गीत, पितृों को पानी देने का विधान, गंगा पूजा, गंगाजली विधान, नव प्रसूता के सवा मास उपरांत कुआँ पूजन, क्या संकेत देते हैं? शादी-ब्याह में वरुण का आव्हान, बारात जाते-आते समय नदी-नालों की पूजा या नारियल भेंट कर, गर्भवती स्त्री को नदी-नाले पार न करने के लोक विधान की सृष्टि और कुछ नहीं केवल जल की महत्ता के सूचक हैं। नदियों को माँ का संबोधन भी इस बात का प्रमाण है कि चर-अचर सभी के लिए जल सर्वथा महत्वपूर्ण है, जलाशय, नदियाँ आदि जलस्रोत पूजनीय, वंदनीय हैं।

यदि जीवन में पानी का महत्व न होता तो पानी को आधार बनाकर कहावतें क्यों बनतीं? मुहावरे क्यों गढ़े जाते? आदमी का पानीदार होना, मुख पर पानी होना, पानी उतर जाना, पानी पी-पी कर कोसना, आँखों के पानी का मर जाना, पानीदार आँखें, आखिर किस महत्ता को प्रतिपादित करती हैं? यह सब पानी की महत्ता को, प्रताप को दर्शाती हैं, लेकिन जब कोई व्यक्ति अपने पानी की परवाह नहीं करता तब महाकवि रहीम को कहना पड़ता है- रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून, पानी बिना न ऊबरे, मोती मानस चून। पानी चला गया तो सब कुछ गया। तलवार का पानी उतर जाता है तो पानी रखवा लिया जाता है, मगर नेत्रों का पानी समाप्त हो जाये तो? इसलिये हमारे चिंतकों, ऋषियों, महाग्रंथकारों ने, लोक संस्कार, संस्थापकों ने जल संरक्षण के अनेक उपाय सुझाये हैं। किसी ने जल को पूजा के माध्यम से, तो किसी ने उसकी पवित्रता की महत्ता को पूजन के बहाने लोक गीत रचे, लोकाचार गढ़ा, पूजा प्रक्रिया हमें दीं, किन्तु संस्कारों की तरह जल की महत्ता को भी हम बिसर गये और आज हालत यह है कि कवि को ऐसे दोहे लिखने पड़ रहे हैं -

इस धरती की आजकल, हालत बड़ी अजीब।
पानीदारों को यहाँ, पानी नहीं नसीब।।
जब पानी भरपूर था, करी नहीं परवाह।
पानी उतरा तो हुआ, गोरा मुखड़ा स्याह।।
नद्दी में पानी नहीं, तला कुआँ गए सूख।
जीव-जन्तु व्याकुल सभी, तोड़ रहे दम रूख।।
जिस दिन भी मर जायेगा, आंखों का जल स्रोत।
मानवता की उसी दिन, बुझी समझ लो जोत।।

हमारे पूर्वज कहा करते थे, जिस तरह के हालात हैं, देखना एक दिन पानी भी मोल के भाव बिकेगा। आज लगभग आधी शताब्दी बाद हम अपने पूर्वजों के शब्दों का साकार होते देख रहे हैं। पानी बोतलों में बंद होकर बिक रहा है, गाँवों में पानी के लिए त्राहि-त्राहि मची है। लोग दस-दस, बीस-बीस किलोमीटर दूर से पीने का पानी ला रहे हैं। पशु-पक्षी पानी के बिना दम तोड़ रहे हैं। नदी-नाले फाल्गुन आते-आते दम तोड़ रहे हैं। नर्मदा जैसी पयस्विनी, सदानीरा की दशा देखी आपने, कितनी दुर्बल हो गई है। बेतवा बेहोश पड़ी दिखती है। यदि

सरिता संस्कृति

जो भूमि केवल वर्षा के पानी से ही सींची जाती है और जहाँ वर्षा के आधार पर ही खेती हुआ करती है, उस भूमि को 'देव मातृक' कहते हैं। इसके विपरीत, जो भूमि इस प्रकार वर्षा पर आधार नहीं रखती, बल्कि नदी के पानी से सींची जाती है और निश्चित फ़सल देती है, उसे 'नदीमातृक' कहते हैं। भारतवर्ष में जिन लोगों ने भूमि के इस प्रकार दो हिस्से किये, उन्होंने नदी को कितना महत्व दिया था, यह हम आसानी से समझ सकते हैं। पंजाब का नाम ही उन्होंने सप्तसिंधु रखा। गंगा-यमुना के बीच के प्रदेशों को अंतर्वेदी (दो-आब) नाम दिया। सारे भारतवर्ष के 'हिन्दुस्तान' और 'दक्खन' जैसे दो हिस्से करने वाले विन्ध्याचल या सतपुड़ा का नाम लेने के बदले हमारे लोग संकल्प बोलते समय 'गोदावर्यः दक्षिणे तीरे' या 'रेवायाः उत्तरे तीरे' ऐसे नदी के द्वारा देश के भाग करते हैं। कुछ विद्वान ब्राह्मण-कुलों ने तो अपनी जाति का नाम ही एक नदी के नाम पर रखा है - सारस्वत। गंगा के तट पर रहने वाले पुरोहित और पंडे अपने-आपको गंगापुत्र कहने में गर्व अनुभव करते हैं। राजा को राज्यपद देते समय प्रजा जब चार समुद्रों का और सात नदियों का जल लाकर उससे राजा का अभिषेक करती, तभी मानती थी कि अब राजा राज्य करने का अधिकारी हो गया। भगवान की नित्य की पूजा करते समय भी भारतवासी भारत की सभी नदियों को अपने छोटे से कलश में आकर बैठने की प्रार्थना अवश्य करेगाः

गंगे! च यमुने! चैव गोदावरि! सरस्वति!
नर्मदे! सिन्धु! कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

● **काका कालेलकर**

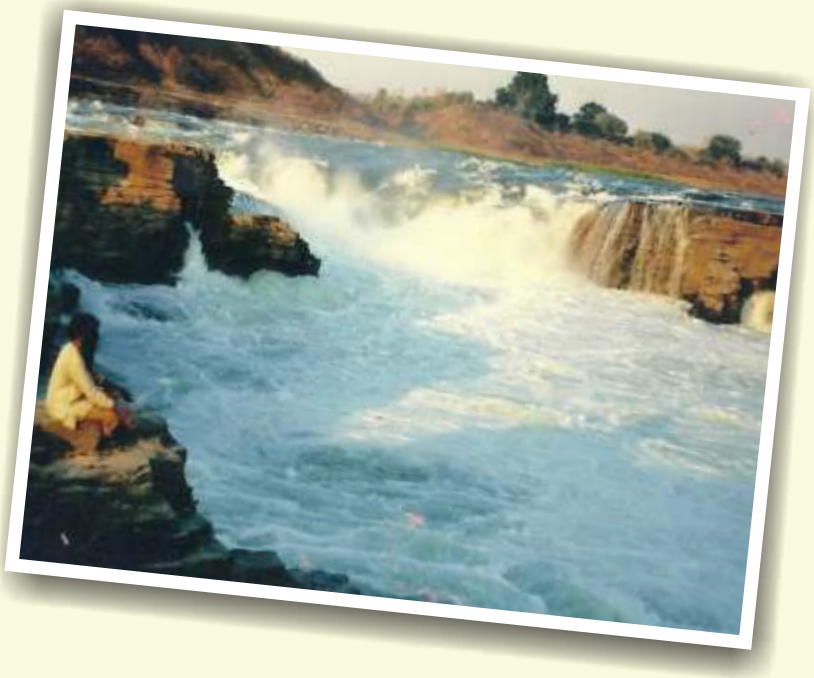

आज के चिंतकों के कथन पर विचार करें तो लगता है कि अगला विश्वयुद्ध पानी के लिये होगा। लाखों-करोड़ों लोग पानी के अभाव में मरेंगे। कितना भयावह चित्र है भविष्य का। हम यहाँ अपने कुछ लोकगीतों को भी याद कर सकते हैं - बुन्देलखण्ड में नर्मदा मैया के लिए एक बमबुलिया गायी जाती है -

नरबदा अरे ऐसी तो मिलीं,
ऐसी तो मिलीं रे जैसे मिल गये
मताई और बाप रे।
नरबदा अरे हो ....।

तभी निमाड़ी बाल अपने सप्तस्वरों में माँ गंगा की आराधना में गा उठेगी -

ओ देवी गंगा, तू बहे ओ सुरंगा,
थारी झबर म्हारा निरमल अंगा।

फिर किसी मालवी बाला को इन्द्रदेव से यह शिकायत नहीं रहेगी कि इन्द्र देव आपने धरती से बोलचाल क्यों बंद कर दी -

धरती अबोलो इंदर राजा क्यों लियो,
मेवाजी, आप बरसो तो धरती नीपजे मेवाजी,
धरती पै होवे सुकाल।

और तब किसी बघेली बाला को अतीत के अकाल को स्मरण कर यह गीत नहीं गाना पड़ेगा -

कहां जावेगा, धरती मैया छाँड़ि
हम कहाँ जावेगा।
या तिरपन के साल, माँ के वादा होइगा।
या तिरपन के साल, रानी बेचई नाथ नथुनियाँ।
नाहीं मिलाई दार अऊ चांउर।
नाहीं कोदइयाँ।

जब हमारे समवेत प्रयासों से धरती का जलस्तर बढ़ जायेगा, प्रदेश के गाँव-गाँव, खेत-खेत, तालाब-कुएँ खुद जायेंगे, स्टॉप डेम बन जाएँगे, सघन वन हमारे चारों ओर होगा, घर-घर में फल-फूलदार वृक्षों की कतारें होंगी, तब न इन्द्र हमसे रूठेंगे, न पानी के लिए हाहाकार मचेगा, न कल-कारखाने बंद होंगे, न गाँवों-कस्बों से पलायन होगा तब हम सब मिलकर ऋषि मंत्र का उच्चारण करेंगे -

गंगे च यमुने चैव गोदावरी,
सरस्वती नर्मदा सिंधु कावेरी,
जलेस्मिन सन्निधिं कुरू।।

मध्यप्रदेश में

भूजल क्या खोया क्या पाया

मध्यप्रदेश में भूजल के उपयोग की कहानी मानव सभ्यता की ही तरह लगभग 5000 साल पुरानी है। उल्लेखनीय है कि मध्यप्रदेश में भूजल विज्ञान की आधारशिला आर्यभट्ट के शिष्य वराहमिहिर ने 505 से 587 ईस्वी में रखी थी। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत संहिता के 54वें अध्याय में भूजल की खोज तथा उसके उपयोग के बारे में अनेक सूत्र प्रस्तुत किये थे। इन सूत्रों को पढ़ने से पता चलता है कि वराहमिहिर को मिट्टी, चट्टानों, दीमक की बाल्मी तथा कतिपय पौधों और उनके लक्षणों की बहुत अच्छी समझ थी। इस समझ की सहायता से लगभग 600 मीटर की गहराई पर उपलब्ध भूजल की खोज की जा सकती थी। इसके अलावा चरक संहिता में भूजल के गुणधर्मों का उल्लेख मिलता है। इसी तरह आयुर्वेद के पुराने ग्रन्थों में पानी के विभिन्न घटकों का वर्णन मिलता है।

मध्यप्रदेश की प्राचीन भूजल संरचनाओं में कुएँ तथा बावड़ी प्रमुख हैं। इनका निर्माण तत्कालीन राजा-महाराजाओं द्वारा किलों, राजमहलों तथा गढ़ियों में किया गया था। ये संरचनाएँ मुख्यतः पेयजल तथा बागवानी की जरूरतें पूरा करने के लिये बनाई जाती थीं। मध्यप्रदेश में सबसे पुराना कुआँ उज्जैन नगर से 3.2 किलोमीटर दूर उत्तर दिशा में खुदाई में मिला है। यह कुआँ टेराकोटा नाम की मिट्टी के आग में पकाये गोल रिंगों से बना है। यह संरचना ईसा से लगभग 500 से 700 वर्ष पूर्व बनाई गई है। इसके अलावा प्रदेश के विभिन्न जिलों के गजेटियर्स में अनेक बावड़ियों तथा कुओं का उल्लेख है। मांडू के प्रसिद्ध हिंडोला महल में 1405 ई. में चम्पा की बावड़ी का निर्माण कराया गया था। यह बावड़ी आज भी अच्छी स्थिति में है। धार जिले के कँवर नामक स्थान पर नौवीं से 13वीं शताब्दी के बीच निर्मित कुआँ पाया गया है। इस कुएँ का निर्माण संभवतः भोज देव ने कराया था। अमझेरा में अकबर के समय का कुआँ, अन्य ऐतिहासिक महत्व के तालाब, छत्री इत्यादि के साथ देखा जा सकता है। बुरहानपुर के पास मुगलकाल में बनाया गया खूनी भंडारा है जो आज भी बुरहानपुर नगर की पेयजल जरूरत का अधिकांश भाग उपलब्ध कराता है।

यह निर्विवादित है कि आबादी की वृद्धि के साथ पानी का उपयोग बढ़ा है। बढ़ते उपयोग ने पानी उपलब्ध कराने की तकनीकों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया और समय की कसौटी पर खरी तकनीकों और उन पर आधारित संरचनाओं का विकास हुआ है। गौरतलब है कि इन सभी संरचनाओं के निर्माण की तकनीकों का विकास, देश और काल की जरूरतों को लम्बे समय तक स्थायी तरीके से पूरा करने की सोच पर आधारित था। उस काल में जमीन के नीचे के पानी निकालने के साधन परम्परागत यथा मोट, रहट, ढेंचा इत्यादि थे तथा उन प्राचीन साधनों की जमीन के नीचे से पानी को निकालने की क्षमता, मौटे तौर पर प्राकृतिक जलचक्र के अनुकूल थी। उस काल में प्राकृतिक जलचक्र सहज था और भूजल भंडारों पर दोहन का किसी भी तरह का विपरीत दबाव नहीं था।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक से भूजल भंडारों से पानी निकालने के साधनों में अन्तर आया और परम्परागत साधनों की जगह डीजल और बिजली से चलने वाले सेन्ट्रीफ्यूगल पम्प उपयोग में आने लगे। मध्यप्रदेश में भी इनका प्रयोग शुरू हुआ। चूँकि इन पम्पों की पानी निकालने की क्षमता परम्परागत साधनों की तुलना में अधिक थी

और वे बिना रुके, काफी समय तक पानी निकाल सकते थे अतः इन साधनों का सिंचाई कार्यों में अधिकाधिक उपयोग होने लगा। कृषि विकास के परिप्रेक्ष्य में भूजल दोहन का यह पहला सोपान था। इस सोपान के साथ ही प्राकृतिक जलचक्र में बदलाव और भूजल भंडारों पर दोहन दबाव की शुरुआत हुई, परन्तु उस समय प्राकृतिक जलचक्र का बदलाव इतना कम था कि उस पर किसी का ध्यान नहीं गया और भूजल का दोहन अबाध गति से बढ़ता गया। समाज और सरकार ने भूजल उपयोग को यथासंभव बढ़ावा दिया।

सेन्ट्रीफ्यूगल पम्पों के बाद टरबाइन पम्प अस्तित्व में आये और फिर सबमर्सिबल पम्पों के अधिकाधिक उपयोग का युग आया। पानी निकालने के पुराने साधनों की तुलना में इन पम्पों की पानी निकालने की क्षमता बहुत अधिक थी। अतः इन पम्पों के उपयोग ने भूजल उपयोग का पूरा परिदृश्य ही बदल दिया। टरबाइन पम्पों और सबमर्सिबल पम्पों की उपलब्धता सहज हुई और उसने भूजल दोहन की दिशा और दशा ही बदल दी। बिजली की सहज उपलब्धता ने भूजल उपयोग को आगे बढ़ाया और असिंचित इलाकों में मानसून की बेरुखी से लड़ने के कारगर हथियार के रूप में भूजल का सर्वत्र दोहन संभव हुआ। आज अत्यन्त कम क्षमता से लेकर बहुत अधिक क्षमता के पम्प उपलब्ध हैं। इन पम्पों के कारण काफी ऊँचाई तक पानी को उठाना संभव है। इसी गुण के कारण लोग इन पम्पों को काम में ला रहे हैं।

मध्यप्रदेश में भूजल के विकास की कहानी 11 अगस्त, 1954 को आरंभ हुई। देश में 350 नलकूपों के खोदने का फैसला लिया गया। इस फैसले के कारण नर्मदा और ताप्ती घाटी में भूजल के भंडारों की क्षमता जानने और उनके वैज्ञानिक आधार पर दोहन करने के लिये पन्द्रह-पन्द्रह गहरे नलकूपों को खोदने का काम हाथ में लिया। नर्मदा घाटी में यह काम होशंगाबाद, नरसिंहपुर, रायसेन और जबलपुर जिलों में और ताप्ती घाटी में बुरहानपुर इलाके में 1955 से शुरू किया गया। नलकूप खनन का दूसरा चरण अक्टूबर 1962 से जून 1963 तक चला। दूसरे चरण में नर्मदा घाटी में 25 नये नलकूप खोदे। सफल नलकूपों की जलक्षमता 20 लीटर प्रति सेकेण्ड या उससे अधिक थी।

मध्यप्रदेश में भूजल भंडारों के सर्वेक्षण का काम सत्तर के दशक में किया। उस दौरान मध्यप्रदेश के प्रत्येक विकासखंड का भूजल सर्वेक्षण किया गया और विकासखंडवार रपट तैयार की गई। इन रपटों में अन्य जानकारी के अलावा नलकूपों और कुओं के बनाने के लिये उपयुक्त क्षेत्र दर्शाये गये थे। इन रपटों के आधार पर मध्यप्रदेश में भूजल दोहन के लिये कार्य किया गया।

किसानों के लिये उथले नलकूप बनाये गये। इसके अलावा नहरों की जलक्षमता बढ़ाने के लिये गहरे नलकूपों का खनन किया गया। यह सारा काम सत्तर के दशक का अत्यन्त महत्वपूर्ण काम था। कुल मिलाकर सत्तर का दशक, नलकूप और कुओं का स्वर्णकाल था। इस दशक में भूजल भंडारों को प्रदेश की विश्वसनीय सम्पदा और पेयजल आपूर्ति के टिकाऊ पर्याय के रूप में चिन्हित किया गया और उसे बहुत अधिक आगे बढ़ाया। अस्सी के दशक का मध्य आते-आते प्रदेश के अन्य इलाकों में भूजल स्तर की गिरावट के गंभीर संकेत उजागर होने लगे। सबसे पहले इन संकेतों की सुगबुगाहट मालवा में अनुभव की गई। अस्सी के दशक में कुओं और नलकूपों को बनाने का काम बड़े पैमाने

पर किया। बाद के सालों में भूजल दोहन पर समाज ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और हर जगह अपनी जरूरत के अनुसार नलकूप और कुएं बनने लगे। इसी दौरान भूजल के उपयोग को सीमित करने या नियंत्रित करने की चर्चा होने लगी।

मार्च 2004 तक प्रदेश में भूजल का औसत सालाना दोहन 48.92 प्रतिशत हो गया है। प्रदेश के 21 विकासखंड अतिदोहित, 05 विकासखंड क्रिटिकल तथा 18 विकासखंड सेमी क्रिटिकल श्रेणी में आ गये हैं। इन 27 अतिदोहित विकासखण्डों में भूजल का दोहन 100 प्रतिशत से अधिक, 05 क्रिटिकल विकासखंडों में 100 प्रतिशत से 90 प्रतिशत के बीच तथा 18 सेमी क्रिटिकल विकासखंडों में भूजल का दोहन 70 से 90 प्रतिशत के बीच पहुंचा। आँकड़ों की बोली में बात करें तो कहा जा सकता है कि अतिदोहित विकासखंडों में भूजल के उपयोग को 50 प्रतिशत के स्तर पर लाने के लिये लगभग 2.2 लाख हैक्टेयर मीटर पानी को रिचार्ज करने की आवश्यकता थी। इसी तरह 05 क्रिटिकल विकासखंडों में भूजल के दोहन को 50 प्रतिशत लाने के लिये 0.27 लाख हैक्टेयर मीटर तथा 18 सेमी क्रिटिकल विकासखंडों में भूजल के दोहन को 50 प्रतिशत के स्तर पर लाने के लिये 0.62 लाख हैक्टेयर मीटर पानी जमीन के नीचे उतारना था। इसके अलावा प्रदेश में 50 प्रतिशत से अधिक भूजल दोहन वाले विकासखंडों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। इन संवेदनशील विकासखंडों पर भी ध्यान देने की जरूरत थी।

पिछले सालों में मध्यप्रदेश में भूजल का विकास खूब हुआ। असिंचित इलाकों में भूजल की मदद से सिंचाई सुविधा खूब बढ़ी। दोहन के अनुपात में भूजल रिचार्ज पर काम नहीं होने के कारण जो पाया था उस पर खतरा मंडराने लगा। इस समस्या को देखते हुए 2001 में तालाब निर्माण की दिशा में कार्य किया गया। इन कामों ने पानी के संरक्षण और भूजल के रिचार्ज को मदद दी। यह कार्य आगे भी बढ़ा, लेकिन उस समय जितना प्रयास हुआ था, वह भूजल की कमी के परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त नहीं था। इस कारण जल संरक्षण और भूजल रिचार्ज पर माँग और पूर्ति के आधार पर भूजल रिचार्ज का काम करना होगा, सही हाथों में कमान सौंपना होगा। यही भूजल संकट से मुक्ति का रास्ता है।

● के.जी. व्यास

हम ही समय हैं

हम ही समय हैं। हम कमनाम हीराक्लीटस* का दिया प्रसिद्ध रूपक हैं।

हम ही पानी हैं, कठोर हीरा नहीं
वह जो खो गया है,
वह नहीं जो निष्कम्प खड़ा है
हम ही नदी हैं
और हम ही हैं वह यूनानी
खुद को जो नदी में देखता है।
उसकी छाया
जल के बदलते आईने में
बदलती जाती है,
उस स्फटिक में जो बदलता है
अग्नि की तरह
हम ही समुद्र तक की
अपनी यात्रा में
निष्फल पूर्वनिर्धारित नदी हैं
परछाईयों ने उसे घेर रखा है
हरेक वस्तु ने हमसे अलविदा कहा था,
हरेक वस्तु चली जाती है।
स्मृति अपने सिक्के पर
मुहर नहीं लगाती।
तब भी कुछ है जो रुका रहता है
तब भी कुछ है जो कराहता रहता है

● **जोर्ज लुई बोर्ख़ेज़, अर्जेन्टीना**

*यूनानी दार्शनिक, जिसने समय के रूप की पानी के बहने से तुलना की।

धरती के बुखार और मौसम

राजस्थान के जिन क्षेत्रों में न पानी था न मिट्टी, जिन्हें डार्क जोन कहा जाता था, 1980 में डॉ. राजेन्द्र सिंह ने उस बंजर क्षेत्र में पानी पर काम करना शुरू किया। पहले अकेले फिर गाँव के लोग जुड़ने लगे। तरुण भारत संघ बना, जल संरचनाओं पर काम बढ़ा, सूखी अल्वरी नदी पानी से भर आयी। कुएँ रिचार्ज हो गये और बंजर धरती उपजाऊ बन गयी, फसलें लहलहाने लगीं। सारी दुनिया ने इस काम को सराहा। 2011 में डॉ. राजेन्द्र सिंह को रमन मैग्सेसे पुरस्कार से अलंकृत किया। लोग उन्हें जल पुरुष कहते हैं, पानी वाले बाबा के नाम से जानते हैं। प्रस्तुत है जल प्रबंधन विशेषज्ञ श्री राजेन्द्र सिंह से रंजना चितले की बातचीत के अंश।

- ***पानी पर काम करने की शुरुआत कैसे हुई?***

राजस्थान में पानी की विकट समस्या थी, अल्वरी नदी सूख चुकी थी। एक दिन गाँव के बूढ़े काका ने मुझे कहा 'म्हणे तो पानी चाहिए' तू ये दवाई का काम बन्द कर दे। मैंने पहले कहा 'मैं यह काम कैसे कर सकता हूँ' तब काका ने मुझे समझाया 'तू ही लोगों को इकट्ठा करके ये काम कर सकता है। कल मैं तुझे काम करना सिखाऊँगा, फावड़ा, पराती और गैंती लेकर आना'। दूसरे दिन काका ने मुझे लगातार 7 सूखे कुओं में उतारा और कुएँ के फैक्टर से परिचित कराया। पानी पर काम करने की वही एक ट्रेनिंग थी और फिर मैंने तय कर लिया कि मैं पानी पर काम करूँगा।

- ***आपको इस काम की प्रेरणा कैसे मिली?***

जल संरचनाओं को संरक्षित करना, पुनर्जीवित करना, उसका पुनर्निर्माण करना यह बात मैंने राजस्थान गोपालपुर गाँव के अनपढ़ ग्रामीणों से 1985 में सीखी। मैंने उन्हें स्वस्फूर्त व निःस्वार्थ भाव से संरक्षण व संवर्धन का काम करते देखा। मैंने उनसे ही सीखा, उन्हीं से प्रेरणा ली और बस जुट गया काम में। अभी भी सीख रहा हूँ और कर रहा हूँ प्रयास।

- ***आपने सूखी अल्वरी नदी को पुनर्जीवित किया, यह कैसे संभव हुआ?***

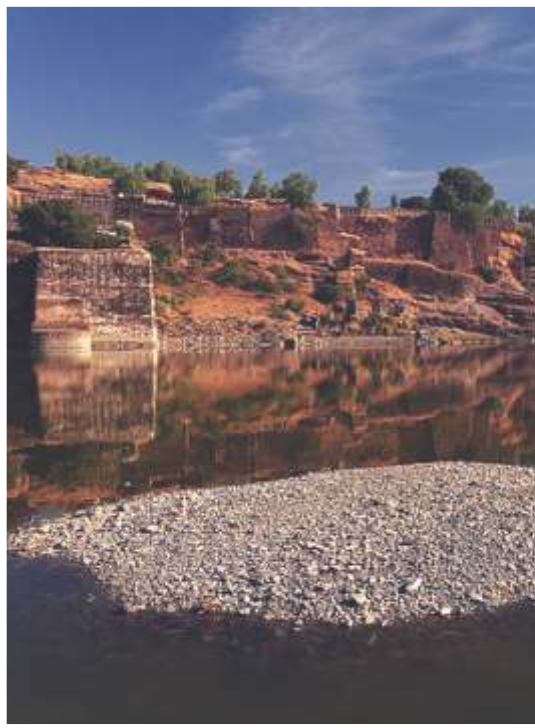

कोई 1980 की बात है। जब अल्वरी नदी सूख गयी थी। अल्वर, सवाई माधोपुर, दोसा, करौली से लोग पलायन कर रहे थे, गाँव में मिट्टी नहीं थी, घास

नहीं थी, पानी नहीं था राजस्थान की महिलाओं का कष्ट था कि वे लगभग 10 किलोमीटर दूर से पानी लेकर आती थीं। महिलाओं के 8 घंटे पानी लाने में बीतते थे। बच्चे पढ़ नहीं सकते थे। माँ पानी लाती थी और बच्चे घर पर रहते थे। तब मुझे लगा कि इस पर काम करना चाहिए। मैंने लोगों से बात की और तालाब खोदने का कार्य शुरू किया। हमने तालाब भी ऐसे एंगल से बनाये ताकि पानी का कम से कम वाष्पीकरण हो। और तालाब के नीचे कुएं बनाए जिससे पानी कुओं में चला जाता था हमने दक्षिण दिशा में पेड़ लगाए ताकि पानी का रोशनी से बचाव किया

के बिगड़ते मिजाज को बचाने की पहल

जा सके। 1999 तक 55 तालाब बन गये धीरे-धीरे संख्या बढ़ती गयी। कुएं जो पहले कहीं सूखे पड़े थे तो कहीं 120 फीट नीचे पानी था उनका जल स्तर बढ़ गया और कुएँ में पानी मात्र 3 फीट पर आ गया। नदी पानी से भर कर सदानीरा हो गयी। 2001 तक क्षेत्र की कोई भी जमीन सूखी नहीं रही। खेतों में फसलें लहलहाने लगीं। धरती का पेट पानी से भर गया। धरती का चेहरा बदला तो समाज का चेहरा भी बदल गया। जो पहले मजदूर थे वे अब मालिक बन गये। गाँव छोड़कर जो लोग गये थे वे वापस अपने गाँव लौट गये।

- ***पर्यावरण की वर्तमान स्थिति को लेकर आप क्या कहना चाहेंगे?***

आज धरती को बुखार है और मौसम का मिजाज़ बिगड़ रहा है। लालची विकास के कारण पर्यावरण का चक्र गड़बड़ा गया है। जलवायु परिवर्तन, बढ़ता तापमान और आपदाएं इसी का परिणाम है। यदि हम विचार करें तो इसे ठीक कर सकते हैं। समाज का एक-एक व्यक्ति जिस गाँव, जिस मोहल्ले में रहता है वह वहीं इसका समाधान ढूंढ़ सकता है।

- ***पर्यावरण संरक्षण में समाज की क्या भूमिका हो सकती है?***

समाज की पहली भूमिका यह हो सकती है कि वे हमारे जीवन में, हमारे स्वास्थ्य से जुड़े सवाल, शैक्षणिक तथा सामाजिक-आर्थिक सवालों पर बहस खड़ी करें। देश में जहाँ अनूठे प्रयास हुए हैं उनसे सीखना, क्योंकि हमारा मन हाथ से किए गए अच्छे कार्यों को करने के लिए तत्पर रहता है। इन कार्यों के लिये भूमिका तैयार करना तथा कार्य करवाना दोनों में स्वैच्छिक संगठनों की महती भूमिका हो सकती है।

- ***ऐसे कौन से उदाहरण हैं। जहां पर वास्तविक जन सहभागिता रही और लोगों ने अपनी नदी जल संरचनाओं को बचाया?***

ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जिनमें समुदायों ने सामुदायिक सहभागिता से अपनी नदी, अपने तालाबों, अपनी जल संरचनाओं को बचाया, राजस्थान के जयपुर में दरियावती नदी, बैंगलुरु में अरकावती नदी, नेल्लूर जिले में कुवम नदी और छत्तीसगढ़ में शिवनाथ नदी आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं, जहाँ जनता ने लड़ाई लड़ी।

- ***ऐसा क्यों लगता है कि अभी जनसामान्य पानी की लड़ाई में आगे नहीं आ रहा है?***

देखिये जीना पहली आवश्यकता है, जो लोग हाशिये पर हैं, वे आज रोटी के लिये संघर्षरत हैं। आज जरूरत इस बात की है कि जिनके पास घर है, रोटी है, वे लड़ें। कल जब आम आदमी सशक्त होगा तो वो भी इस यज्ञ में अपनी आहूति सुनिश्चित करने लगेगा। पानी का मुद्दा अभी हाथ से निकला नहीं है।

- ***आपकी दृष्टि में विकास के मायने क्या है?***

देखिए जीवन में दो रास्ते होते हैं एक विकास और दूसरा समृद्धि। विकास दिखने के लिए करते हैं। जल्दी-जल्दी लक्ष्य तक पहुँचने की प्रक्रिया विकास है और समृद्धि में संतोष, शांति, समाधान, आनन्द है। यदि समृद्धि संरक्षण की दृष्टि से हो तो ज्यादा दूर तक जा सकते हैं।

- ***आप हमारे पाठकों को क्या संदेश देना चाहेंगे?***

लोगों का साध्य स्पष्ट करने के लिये प्रकृति और मानव संबंधों को ध्यान में रखते हुए अपनी साधना की रचना करनी होगी, प्रयासों को तय करना होगा। साधना की रचना में बिन्दुओं को समझकर जल संरक्षण, संवर्धन, जीवन शिक्षा और स्वास्थ्य की दिशा में कार्यक्रम बनाना और उन कार्यक्रमों को अपने अंदर की स्वैच्छिकता से साधना होगा। 21वीं शताब्दी के दूसरे दशक में धरती के चढ़ते बुखार और मौसम के बिगड़ते मिजाज को ध्यान में रखते हुए अपने लिए अपने जीवन का साध्य सुनिश्चित करना यह आज की आवश्यकता है।

भीमकुण

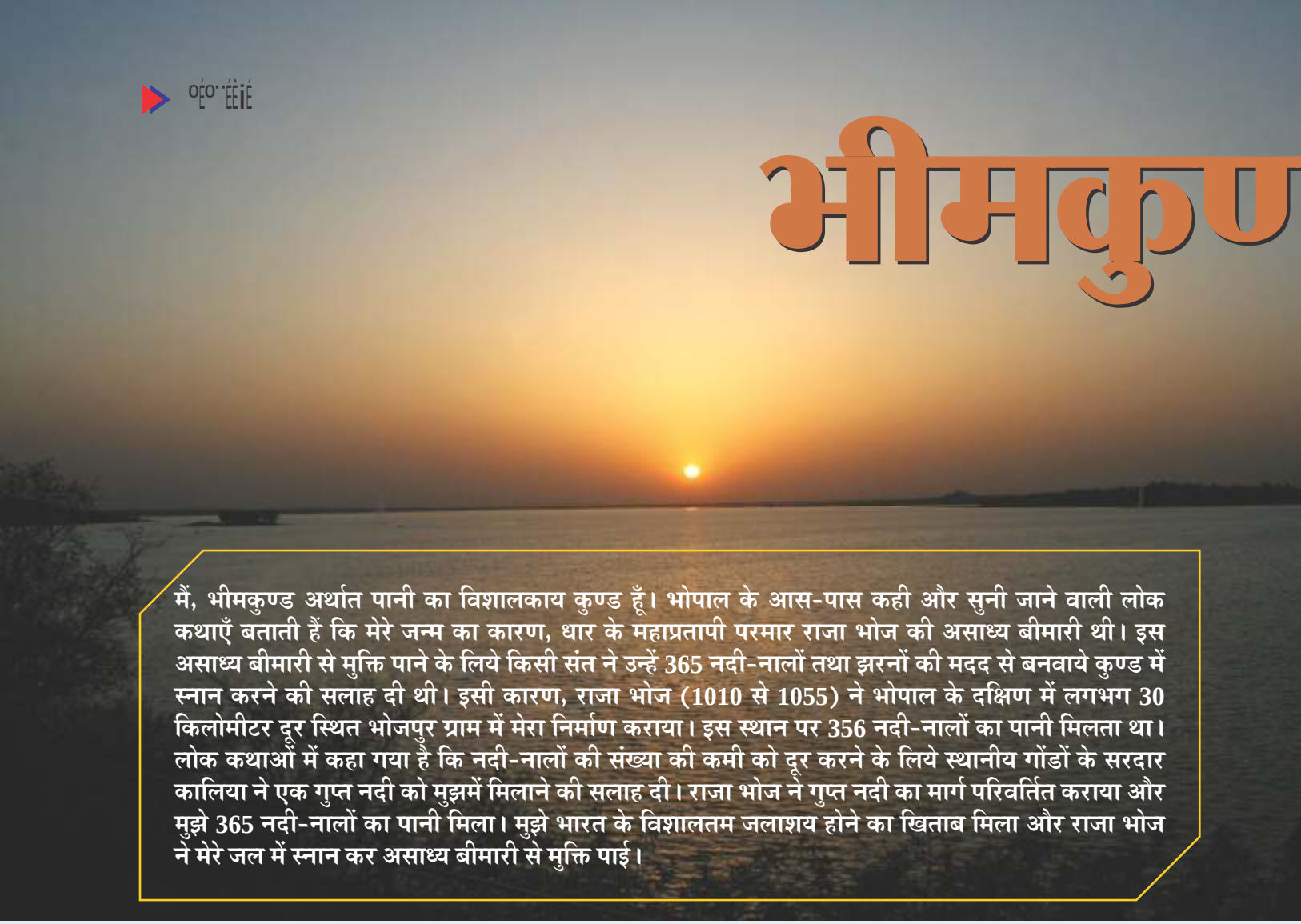

मैं, भीमकुण्ड अर्थात पानी का विशालकाय कुण्ड हूँ। भोपाल के आस-पास कही और सुनी जाने वाली लोक कथाएँ बताती हैं कि मेरे जन्म का कारण, धार के महाप्रतापी परमार राजा भोज की असाध्य बीमारी थी। इस असाध्य बीमारी से मुक्ति पाने के लिये किसी संत ने उन्हें 365 नदी-नालों तथा झरनों की मदद से बनवाये कुण्ड में स्नान करने की सलाह दी थी। इसी कारण, राजा भोज (1010 से 1055) ने भोपाल के दक्षिण में लगभग 30 किलोमीटर दूर स्थित भोजपुर ग्राम में मेरा निर्माण कराया। इस स्थान पर 356 नदी-नालों का पानी मिलता था। लोक कथाओं में कहा गया है कि नदी-नालों की संख्या की कमी को दूर करने के लिये स्थानीय गोंडों के सरदार कालिया ने एक गुप्त नदी को मुझमें मिलाने की सलाह दी। राजा भोज ने गुप्त नदी का मार्ग परिवर्तित कराया और मुझे 365 नदी-नालों का पानी मिला। मुझे भारत के विशालतम जलाशय होने का खिताब मिला और राजा भोज ने मेरे जल में स्नान कर असाध्य बीमारी से मुक्ति पाई।

इतिहासकारों के अनुसार माण्डु के शासक होशंगशाह ने सन् 1430 में मेरी पाल तुड़वा दी थी। भले ही आज से लगभग 570 साल पहले मेरा अस्तित्व समाप्त हो गया था पर आज भी ताल है भोपाल का, बाकी सब तलैया कह कर याद करते हैं। इतिहास में मेरा नाम दर्ज है। लोग कहते हैं कि जलाशय के टूटने से हासिल हुई जमीन गेंहूँ की खेती के लिये बहुत मुफीद है। मेरे निर्माण में तत्कालीन भारतीय जल विज्ञान और निर्माण तकनीकों को काम में लिया गया था। लोग मुझे इंजीनियरिंग का अनूठा उदाहरण कह कर याद करते हैं।

सन् 1430 में मेरा अन्त हो गया पर स्थानीय समाज में प्रचलित लोक गाथाओं ने मुझे आज तक जिन्दा रखा। अंग्रेज इतिहासकार डब्ल्यू. किनकेड ने सन् 1888 में सबसे पहले रेम्बल्स एमंग रुइन्स इन सेन्ट्रल इंडिया (द इंडियन एंटिक्वेरी, खंड 18, पेज 348 से 352) में लेख लिख कर सारी दुनिया के सामने मेरी कहानी पेश की जिसके बाद इतिहासकारों और पुरातत्ववेत्ताओं से मेरा परिचय हुआ। किनकेड के 20 साल बाद सी.ई. लार्ड ने भोपाल रियासत के गजेटियर में मेरा विवरण पेश किया। काफी सालों तक मेरी कहानी, किनकेड के लेख के विवरणों तक सीमित रही। किनकेड के अनुसार मेरा जलाशय भोपाल के दक्षिण में स्थित दुमखेड़ा ग्राम तक और दक्षिण में कालियाखेड़ी ग्राम तक फैला था। उसी ने सबसे पहले मेरे वेस्टवियर का पता लगाया था। मेरी कहानी के तकनीकी पक्ष पर बहुत कम शोध हुआ है। इस कारण, कुछ लोग भोपाल के बड़े तालाब को मेरा अवशेष बताते हैं।

भूजलविद के.जी. व्यास ने मेरी जन्मकुण्डली को खंगालकर कुछ अनछुए एवं अज्ञात तकनीकी पहलुओं पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार, मेरा निर्माण पूरी तरह आधुनिक इंजीनियरिंग एवं वित्तीय मापदण्डों के अनुसार हुआ था। उनके अनुसार, स्थानीय मिट्टी से बनी मेरी पाल बहुत विशाल है। पाल के दोनों तरफ लाल पत्थर के तराशे पत्थरों की जमावट काबिले तारीफ और इतनी सटीक है कि लगभग हजार साल बीतने के बाद भी वह यथावत है। दूसरे, राजा भोज के दक्ष कारीगरों

ड की आत्मकथा

ने मेरे वेस्टवियर की ऊँचाई का निर्धारण इतनी कुशलता से किया था कि लगभग 400 साल बीतने के बाद भी बरसाती पानी ने मेरी पाल की लक्ष्मण रेखा नहीं लांघी और मैं कभी भी जलप्रलय का पर्याय नहीं बना।

व्यास ने कम्प्यूटर तकनीक का उपयोग कर मेरा क्षेत्रफल, भौगोलिक स्थिति और पानी देने वाले केचमेंट के इलाके को ज्ञात किया है। इस गणना के अनुसार मेरे जल कुण्ड का क्षेत्रफल लगभग 40 हजार हैक्टेयर है। यह क्षेत्रफल किनकेड के अनुमान का लगभग 60 प्रतिशत है। मेरे केचमेंट का क्षेत्रफल लगभग एक लाख अड़तालीस हजार हैक्टेयर है। किनकेड ने मेरे जलाशय में केवल एक द्वीप (मंडी द्वीप) की उपस्थिति का जिक्र किया है पर कम्प्यूटर गणना बताती है कि मेरे कुण्ड में पाँच द्वीप थे। यह जानकारी, मेरे जीवन की कहानी के अज्ञात पक्ष पर पड़ी धुंध को छांटने का प्रयास करती है। किनकेड के अनुसार मेरी अधिकतम गहराई 100 फीट मानी थी। व्यास ने मेरे जलाशय क्षेत्र के 18 ग्रामों में खोदे नलकूपों की मदद से मेरी गहराई का अनुमान लगाया है जिसके अनुसार मेरी अधिकतम गहराई लगभग 40 मीटर और औसत गहराई 20 मीटर रही होगी। ड्रिलिंग आंकड़ों के अनुसार मेरी अधिकतम गहराई, कलियासोत और बेतवा नदियों की तली में, पाल के निकट, रही होगी।

मेरी कुण्डली बताती है कि मेरे कुण्ड को पूर्व पश्चिम, पश्चिम और दक्षिण में स्थित विंध्याचल की पहाड़ियों से हर साल लगभग 85 हजार हैक्टेयर मीटर और मेरे कुण्ड या जलाशय क्षेत्र पर बरसने वाले पानी से लगभग 44 हजार हैक्टेयर मीटर पानी मिलता था। पानी की यह मात्रा भोपाल जैसे शहर को लगभग पन्द्रह साल तक पानी उपलब्ध करा सकती थी।

मेरे बनने से सबसे अधिक बदलाव कलियासोत और कोलांस नदियों की घाटियों में हुए। कोलांस नदी के जीवनकाल में तीन बार उतार चढ़ाव आये। मौजूदा कलियासोत नदी का सफरनामा, सन् 1430 के बाद का है। इस सफरनामे के अनुसार, वह अपने उदगम (भदभदा के पास मौजूद जल-विभाजक रेखा) से चल कर, मेरी एक किलोमीटर लम्बी पाल के पास पहुँचती है। जहाँ से वह लगभग 90 डिग्री के कोण से घूम कर पश्चिम की ओर चलती हुई भोजपुर से लगभग 500 मीटर पहले बेतवा नदी को मिल जाती है। कलियासोत के जीवन की कहानी का दूसरा भाग, दसवीं सदी में प्रारंभ होकर सन् 1430 में खत्म हो जाता है।

इस दौर में बड़ा तालाब अस्तित्व में था। इस कालखंड में वह, अपने मूल उद्‌गम से तो निकलती है पर उसकी यात्रा बिलखिरिया खुर्द ग्राम के पास आकर समाप्त हो जाती है जहाँ उसका मिलन मेरे जलाशय से होता है। कलियासोत का सबसे पुराना दौर, मेरे निर्माण के पहले का, करोड़ों साल पुराना दौर है। इस दौर में उसका उद्‌गम पहले की तरह, भदभदा की जल विभाजक रेखा के निकट था पर उसका पुराना संगम, वर्तमान संगम से लगभग 1500 मीटर आगे था। मेरे प्राचीन मार्ग को सेटेलाईट चित्रों, सर्वे ऑफ इंडिया की टोपोशीट (55E/12) और आँखों से देखा जा सकता है। मेरी कहानी के भूगोल की आज भी, पुख्ता तसदीक की जा सकती है।

व्यास ने परमारकालीन पुरानी गुमनाम नदी के पुनः जिन्दा होने की कहानी का सच जानने के लिये बड़ा तालाब, भदभदा और कलियासोत नदी की जल विभाजक रेखा के आसपास के क्षेत्र में प्रवाहित नदी नालों का अध्ययन किया है। इस अध्ययन से पता चलता है कि कोलांस नदी घाटी का पानी, भदभदा की पहाड़ी को लांघ कर कलियासोत घाटी में प्रवाहित नहीं हो सकता। नदी विज्ञान से जुड़े आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों की रोशनी में कहा जा सकता है कि पुरानी गुमनाम नदी के पुनः जिन्दा होने की परमारकालीन कहानी सच नहीं है। इस खोज से मैं बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि इस खोज से समाज में प्रचलित गलतफहमियों पर विराम लगेगा। कोलांस नदी की कहानी बहुत रोमांचक है। राजा भोज ने कोलांस पर बड़ा तालाब बनवा कर उसके अतिरिक्त पानी को कलियासोत के रास्ते भीमकुंड पहुँचाया। बड़े तालाब के बनने के कारण कोलांस की कहानी में जो परिवर्तन हुआ, वह जानने लायक है। यह, मेरी कहानी का सबसे अधिक दिलचस्प भाग है। दसवीं सदी में बड़ा तालाब बना। उसका अतिरिक्त पानी भदभदा वेस्ट वियर, कमला पार्क की भूमिगत सुरंग और रेतघाट के बोल्डर बांध के रास्ते बहता था।

कमला पार्क की सुरंग और रेतघाट से निकला पानी, कोलांस नदी के पुराने जलमार्ग से बहता था। सन् 1794 में छोटे तालाब के बनने के कारण दसवीं सदी के नाले की पहचान खो गई पर छोटे तालाब की पाल से बाहर निकले पानी ने पातरा नाले को जन्म दिया। कोलांस का नदी पथ तो यथावत रहा पर उसका नाम पातरा हो गया।

भोपाल के नवाबों ने 1930 के आसपास, शहर की बढ़ती आबादी की जलापूर्ति के लिये, भदभदा के निकट लगभग चार फीट ऊँचा स्पिल-वे बनवाया। सन् 1963 में बड़े तालाब की क्षमता को बढ़ाने के लिये भदभदा का मौजूदा वेस्ट वियर बना तथा भोपाल के निचले इलाकों को बाढ़ से बचाने के लिये रेतघाट और पुलपुख्ता की ऊँचाई बढ़वाई।

कमला पार्क की रिसती पाल की सुरंग की मरम्मत कराई। बस यही है मेरी आधी-अधूरी मौजूदा कहानी। मध्यप्रदेश की गौरवगाथा का यह छोटा-सा विस्मृत आख्यान है। गुजारिश है, बन पड़े तो इसमें नये अध्याय जोड़ें और उसे संवारें।

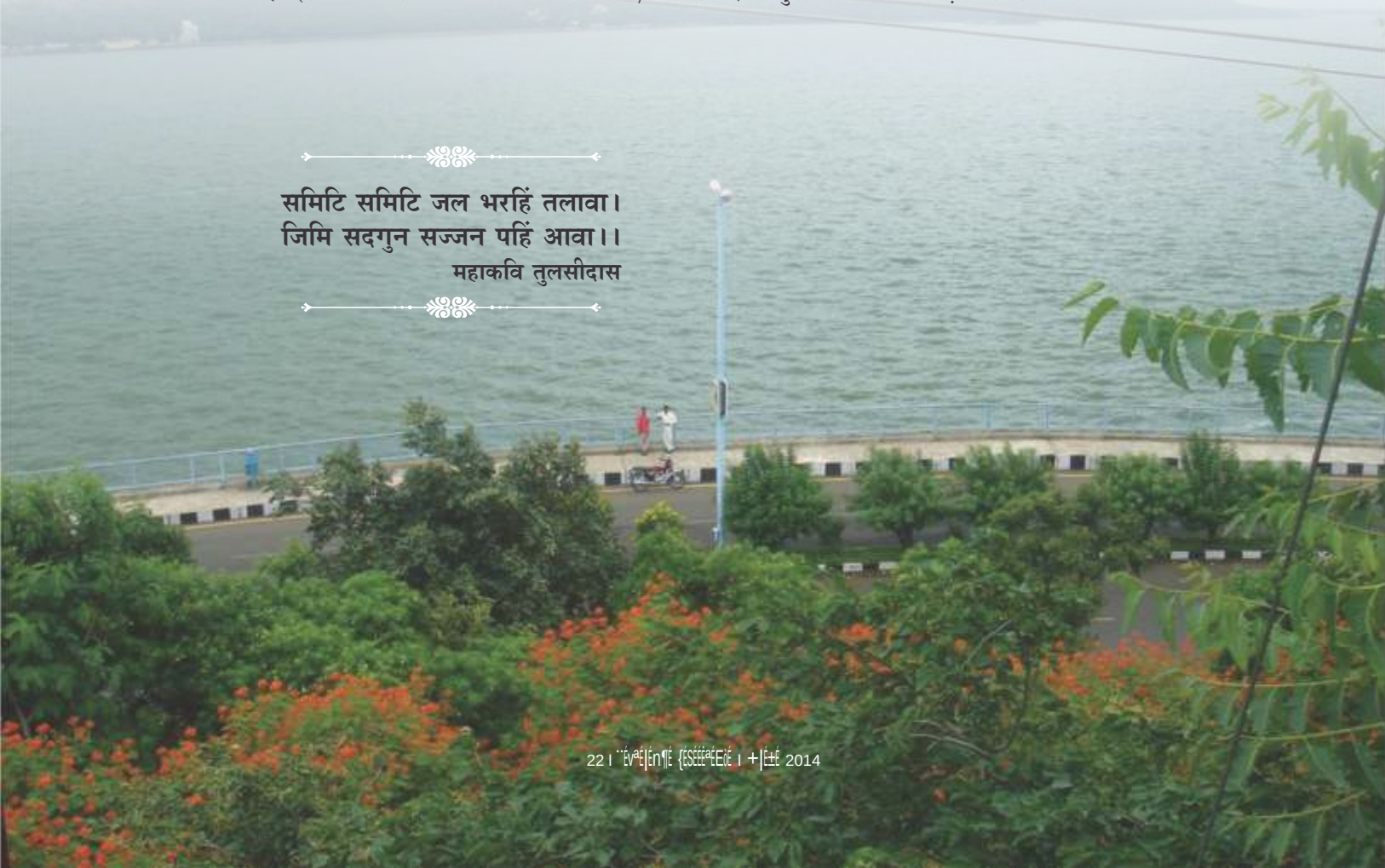

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा।।
महाकवि तुलसीदास

पानी की प्रेम कहानी

मध्यप्रदेश के धार जिले का मांडव याने पर्यटन की दुनिया में भारत का सितारा! बादलों के बीच पहाड़ियों, किलों, खण्डहरों से झांकते इतिहास के इन्द्रधनुषी पृष्ठ! सिटी ऑफ जॉय, आनंद की नगरी, शादियाबाद! मांडव याने बाजबहादुर और रानी रूपमति का पवित्र अनुराग! जिसके पीछे हैं - संगीत के राग! महलों के जर्रे-जर्रे में छिपी प्रेम कहानी! लेकिन, आज हम आपको मांडव की एक और 'प्रतिभा' से रूबरू कराएंगे! चौंकाने वाली, अद्‌भुत, मांडव के तत्कालीन सत्ता पुरुषों व समाज के कौशल को दिल से आदाब कराने वाली! यह है - समाज और पानी की प्रेम कहानी!

मांडव : ए लव स्टोरी ऑफ वॉटर!

आम तौर पर यह किंवदंती प्रचलित है कि जितनी भी पुरानी सभ्यताएं या शहर बसे हैं, वे किसी नदी के किनारे पाए जाते हैं- ताकि पानी और जीवन के रिश्तों को आंच न आए। लेकिन, यहाँ के इतिहास पुरुषों और समाज के लिये क्या कहा जाए कि - पहाड़ी पर बसे इस पुरातनकालीन समृद्ध विरासत वाले क्षेत्र में कोई नदी नहीं बहती है ...। प्रश्न उठता है- फिर पानी... ? इसी का जवाब बताता है कि तत्कालीन समाज के ज्ञान, समझ, दूरदृष्टि और आत्मविश्वास का नाम ही उस काल में पानी संचय की कहानियां हैं.... जो आज भी मांडव में देखी जा सकती हैं.... उस 'पर्यटक' को दांतों-तले उंगली दबाने पर भी मजबूर करती हैं।

मांडव का जल प्रबंधन - सभी आधुनिक तकनीकों को सदियों पहले ही करके छोड़ चुका था...! सरदार सरोवरों या नर्मदा सागरों जैसे 'बांधों' वाले प्रयोगों को यहाँ आजमाया जाता रहा है। आज का बहुचर्चित रूफ वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम - यहां महलों की शान हुआ करता था...! पहाड़ से नीचे उतरते पानी को रोकने के लिए बनाए कई तालाब- आज भी आपको-तत्कालीन तकनीक समझा सकते हैं। आज के साइफन सिस्टम को उस काल में चुटकियों में तैयार कर लिया गया था। जल संग्रहण के लिये तैयार की गई बावड़ियाँ- केवल पानी संग्रह का स्थान नहीं, बल्कि सुरक्षित महलनुमा 'वातानुकूलित' बरामदों वाली और जीवन रक्षक जैसी उपाधियों से विभूषित रही हैं। आज का 'लिफ्ट सिस्टम' वे आजमा लेते थे ... ! रानी साहिबान.... के लिए स्नानगृहों की व्यवस्थाएँ भी उत्कृष्ट जल प्रबंधन की मिसाल प्रस्तुत करती हैं। पानी की स्वच्छता के लिए - फिल्टर तकनीक भी मन मोहने वाली रही है। जल संचय अभियान में आज के नारे - 'गाँव का पानी गाँव में, खेत का पानी खेत में' - को वे सदियों पहले - 'महल का पानी महल में' - जैसे माइक्रोलेबल पर - सफलतम प्रयोग कर चुके थे। वर्षा की बूंदों की सही मायने में वे मनुहार करते थे - और इसे जमीन के सुकून का आधार बना चुके थे। पानी की किसी बूंद को तब बेकार नहीं बहने दिया जाता था - तब एक ही मकसद था - पानी रोको ... ! और इसी मकसद के सहारे मांडव इस किंवदंती को झुठला सका कि समाज यदि दृढ़ संकल्पित है तो केवल वर्षा जल से, बिना नदी के किनारे भी - आत्मशक्ति के साथ सभ्यताएं जिंदा रह सकती हैं।

मांडव, विंध्याचल पर्वत माला के

आखिरी छोर पर बसा है। उत्तर से दक्षिण के बीच यह मालवा क्षेत्र का प्रमुख सत्ता केन्द्र रहा है। मांडव के इतिहास को चार भागों में बांटा जा सकता है - (1) परमार काल - 800 से 1300 तक। (2) सुल्तान काल - 1300 से 1535 तक। (3) मुगल काल 1536 से 1725 तक। (4) मराठा काल 1725 से 1947 तक। यहाँ राजा भोज, राजा मुंज से लगाकर सम्राट अकबर, जहांगीर और शाहजहाँ का आधिपत्य रहा। कहते हैं, यहाँ 40 तालाब, 70 तत्कालीन तकनीक के स्टापडेम और 12 सौ बावड़ियाँ व कुएं थे। जल प्रबंधन की अनेक मिसालें यहाँ अपनी-अपनी तरह की तकनीकें प्रदर्शित करती हैं।

मांडव के पूर्वी हिस्से में सात सौ सीढ़ी नामक स्थान है, जो तत्कालीन समय में जल संरक्षण की अनूठी तकनीक प्रस्तुत करता है। यह ऐसा स्थान है, जहां दोनों ओर से साढ़े तीन-साढ़े तीन सौ सीढ़ियाँ नीचे की ओर जाती हैं - इसीलिए इसका नाम सात सौ सीढ़ी पड़ गया। यहाँ अनेक नालों का पानी आता है। तत्कालीन शासकों ने यहाँ पत्थरों का बाँध बनाया था। बड़े पैमाने पर यहाँ पानी को रोका जाता था। यहाँ रहट प्रणाली से पानी लिफ्ट किया जाता था। रहट का पानी बैलों, ऊँट, घोड़े आदि के माध्यम से डिब्बों के द्वारा बाँध से ऊपर खींचा जाता रहा है। इतिहासकारों का मत है कि इस बाँध का निर्माण 13वीं और 14वीं सदी के आसपास हुआ होगा। याने परमारों के अन्त व सुल्तानों की शुरुआत के दरमियान। परमार शासकों में राजा भोज व राजा मुंज ने मालवा क्षेत्र में अनेक तालाब बनाए। इस बात पर भी शोध किया जा सकता है कि क्या भोजपुर का तत्कालीन बाँध व मांडव का यह बांध एक जैसी संरचनाएँ रही हैं- क्योंकि वह भी लगभग इसी शैली में बनाया गया था। मांडव के इस बांध को बाहरी आक्रमणों से रक्षा के दौरान समय-समय पर तोड़ा भी जाता रहा। अभी भी इसके अवशेष देखे जा सकते हैं। मांडव के इस पूर्वी भाग में आम जनता निवास करती थी। लाल बंगला वाले क्षेत्र में अनेक तालाब बने हुए थे। इनमें मुख्य रूप से राजा हौज, भोर, लम्बा, समन, सिंगोड़ी व लाल बंगले का तालाब आदि हैं। इनका पानी ओवर-फ्लो होकर एक-दूसरे में जाता रहता था। इन तालाबों के सूख जाने पर सात सौ सीढ़ी से पानी लिफ्ट कर इनमें डाला जाता था। इस आबादी वाले इलाके में अनेक बावड़ियाँ व कुएं थे, जो इस पूरे सिस्टम के कारण जिंदा रहा करते थे। अभी भी लाल बंगला क्षेत्र के जंगलों में हजारों मकानों की नींवों के अवशेष देखे जा सकते हैं। यह तकनीक-डेम व तालाबों पर आधारित रही।

शाही महल में बनी चम्पा बावड़ी - माण्डव

अब कुछ उदाहरण तत्कालीन समय में वर्षा जल को महलों अथवा आसपास के स्थानों में 'रूफ वाटर हार्वेस्टिंग' पद्धति द्वारा संचित करने के देखते हैं ... ! मांडव किले का क्षेत्रफल 48 मील है। यह देश के बड़े किलों में से एक है। इसके उत्तरी भाग में रानी रूपमति महल, बाजबहादुर महल, रेवा कुण्ड आदि का जल प्रबंधन देखने लायक है। रानी रूपमति महल उस समय में वॉच टॉवर के रूप में भी उपयोग में लाया जाता था। यह पहाड़ी के शीर्ष पर है। कहते हैं, बाजबहादुर की प्रेमिका रानी रूपमति यहीं से हर रोज सुबह दूर दिखती नर्मदा मैया के दर्शन करने आती थीं। दरअसल, रूपमति धरमपुरी के राजा की बिटिया थी। अकबर के प्रशासक बाजबहादुर का संगीत प्रेम ही रूपमति से भी प्रेम का कारण बना। इस महल को रूपमति के नाम से जानने लगे। रूपमति महल में पानी प्रबंधन 'महल का पानी महल में' - की अवधारणा पर आधारित था। यहाँ छत पर आई वर्षा जल की बूंदों को सहेजकर पाइप व नालियों के माध्यम से पहली मंजिल पर उतारने की व्यवस्था है। इस पानी को पहले हौज में एकत्रित किया जाता रहा। यहाँ कोयले व रेती के जरिए इसको फिल्टर किया जाता था। यहाँ से पानी एक बड़े हौज में एकत्रित होता था। यहाँ सैनिक इसका उपयोग पीने के लिए करते थे। सदियों का वक्त बीतने के बावजूद- इस व्यवस्था को

आसानी से उसी स्थिति में समझा जा सकता है।

रानी रूपमति महल के सामने जल प्रबंधन की एक और मिसाल है- रेवा कुण्ड। यहां दो कुण्ड हैं - छोटा व बड़ा। इन कुण्डों में आज भी पानी देखा जा सकता है। बड़े कुण्ड में नीचे उतरने के लिए बावड़ीनुमा संरचना की तरह सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। रेवा कुण्ड के पास एक धर्मशाला है। जहां बाहर से आने वाले अतिथि उस काल में रुका करते थे। इसकी छत पर आया बरसात का पानी भी रेवा कुण्ड का बड़ा स्रोत रहा है। नालियों की पूरी प्रणाली के माध्यम से पहले पानी छोटे कुण्ड में आया करता था। यहाँ फिल्टर के बाद बड़े कुण्ड में उतारा जाता था। कुछ पानी रानी रूपमति महल के ओवर-फ्लो सिस्टम से भी यहाँ आता था।

रेवा कुण्ड में पानी की आवक के साथ-साथ जावक की भी प्रणाली रही है। इसके सामने की ओर बना है - बाजबहादुर महल। रेवा कुण्ड का पानी लिफ्ट कर बाजबहादुर महल में पहुँचाया जाता था। रहट प्रणाली से डिब्बों के माध्यम से पानी ऊपर लाकर एक हौज में डाला जाता था। यहाँ पत्थरों की पाइप लाइन प्रणाली मौजूद थी। इन्हीं के माध्यम से पानी - महल के भीतर जाता था। यहाँ एक कुण्ड भी बना हुआ है। किंवदंती है कि बाजबहादुर इस महल में संगीत की प्रतिस्पर्धाएँ कराता था। इन तीनों स्थानों की प्रणाली स्वतंत्र अस्तित्व लिए हुए थी। यहाँ रेवा कुण्ड को वापस इसकी पुरानी पहचान दिलाए जाने की जरूरत है। यहाँ अंतिम संस्कार भी किया जाता है। कुण्ड फिलहाल दुर्दशा का शिकार हो चला है। मांडव के गाइड श्री राधेश्याम चंदेसरी कहते हैं - 'यहाँ पानी की चिंता करने वाले लोगों का कहना है कि मांडव में पानी का समृद्ध इतिहास रहा है। यदि हर जलस्रोत का बेहतर रखरखाव हो, पर्याप्त खुदाई की जाए व उनके आव क्षेत्रों की भी देखभाल की जाए तो मांडव में पुनः इतने पानी का प्रबंध हो सकता है कि धार को भी आपूर्ति की जा सकती है।'

सागर तालाब - मांडव का सबसे बड़ा तालाब माना जाता है। पहाड़ी मीराबाई की जिरात से नीचे जाकर फालतू बह जाने वाले पानी का संरक्षण करने के लिए ही तालाब का निर्माण किया गया होगा। इसके चारों ओर सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, जिनके अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं। इस तालाब के पानी का उपयोग आज भी मांडव में जल आपूर्ति के लिये किया जाता है। यह सदानीर है। बरसात के दिनों में इसमें 28 फीट पानी भरा रहता है। इस तालाब के सामने एक और जल संरचना है। इसे 'सागरी' कहा जाता है। मीराबाई के जिरात वाली पहाड़ी के कुछ भाग तथा सागर तालाब के ओवर-फ्लो का पानी - यहाँ एकत्रित हो जाता है। इसके अलावा सागर तालाब की रिसन का पानी भी यहीं आता है। अर्थात् व्यवस्था ऐसी की गई थी कि इस क्षेत्र में आई बरसात की बूंदें कभी भी फालतू बहकर न चली जाएं। उन्हें हर कीमत पर ... थोड़ी-थोड़ी दूरी पर रुकने की मनुहार करना है।

सागर तालाब से आगे थोड़ी दूरी पर ही दरियाव खान का मकबरा बना हुआ है। दरियाव खान मेहमूद खिलजी (द्वितीय) के समय उच्च पद पर आसीन था। लाल पत्थर से निर्मित इस इमारत को स्थापत्य कला की अद्वितीय मिसाल कहा जा सकता है। इस मकबरे के पास ही जल संरक्षण की एक सुंदर संरचना है। इस कुण्ड में भरी गर्मी में भी पानी के दीदार किए जा सकते हैं। इसमें नीचे उतरने की बेहतरीन सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। आर्चेस हैं। इनमें प्रकाश परावर्तक पत्थर लगाए गए हैं। इस कुण्ड को लोग 'समौती कुण्ड' के नाम से जानते हैं। इस कुण्ड के पास ही सराय भी बनी हुई है। यहाँ पर भी छतों पर बूंदों को नालियों के सहारे हौज में पहुंचाया जाता था। पानी की इस व्यवस्था से पुनः इस बात की पुष्टि होती है कि जल संचय की प्रणाली 'विकेंद्रित' रही। जहां जिसको पानी की आवश्यकता है - उन्हें वहीं पानी उपलब्ध कराया जाए और इस पानी की मूल व्यवस्था भी उसी परिवेश के जिम्मे थी। ... और तो और चोर कोट में जहाँ कैदी रखे

जाते थे, वहां भी पास में बावड़ी बनाई गई थी। इसे भी छत पर आए वर्षा जल से भरा जाता था - और कैदियों को भी पानी के लिये किसी और पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था।

मांडव के नीलकण्ठेश्वर महादेव मंदिर का जल प्रबंधन - रमणिक और अद्‌भुत है। दूर पहाड़ी पर गिरी वर्षा बूंद का सफर - सुहाना और निराला है। इन बूंदों को रोक-रोककर अन्ततः खाई में जाने के पहले भी रिसाव के लिए - निमंत्रित किया जाता रहा है। मुगलकाल में इसे 'आनंद प्रासाद' के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा। बादशाह अकबर को भी यह स्थान अत्यन्त प्रिय था - उन्होंने यहाँ लिखवाया था - मैंने अपनी सारी जिंदगी ईंट और पत्थरों में व्यतीत की। कोई भी मुसाफिर पाँच-दस मिनट इस स्थान पर विश्राम करे तो मैं समझूँगा - मेरी मेहनत सफल हुई।

मीराबाई की जिरात वाली पहाड़ी के एक हिस्से पर आए वर्षा जल को रोकने के लिए नीलकण्ठेश्वर महादेव मंदिर के ऊपरी हिस्से में एक तालाब बनाया गया। इस तालाब से रिसकर आने वाले पानी को कुण्डनुमा संरचना बनाकर रोका गया। यहाँ से पानी बहता हुआ भीतर ही भीतर महादेव मंदिर के गर्भगृह में जाता है। यहाँ झरने जैसी रचना है- पत्थर की। इसमे दीये जैसी आकृति बनी रहती है - जिसमें मिट्टी आदि रुक जाती है - यह संरचना उज्जैन के कालियादेह और भोपाल के इस्लामनगर के जल प्रबंधन में भी देखी जा सकती है। यहाँ से पानी पुनः कुण्ड में आता है। यहाँ से ओवर-फ्लो होने के बाद पानी - 'नागफनी' के बीच से गुजरता है। यहाँ - इसका एक बार फिर फिल्ट्रेशन होता है। इसी दरमियान प्राकृतिक फव्वारा भी बनाया गया है। ऊपर से दबाव के साथ आया पानी - पतली नली में जाता था - जो एक फव्वारे के रूप में निकलता था। यहाँ से निकले पानी को नीचे उतारा जाता है, जो रिचार्जिंग होकर पहाड़ी के नीचे वाले भाग में समाता जाता है।

मांडव में पानी की अनेक संरचनाएँ आपको चप्पे-चप्पे पर मिल जाएंगी। धार

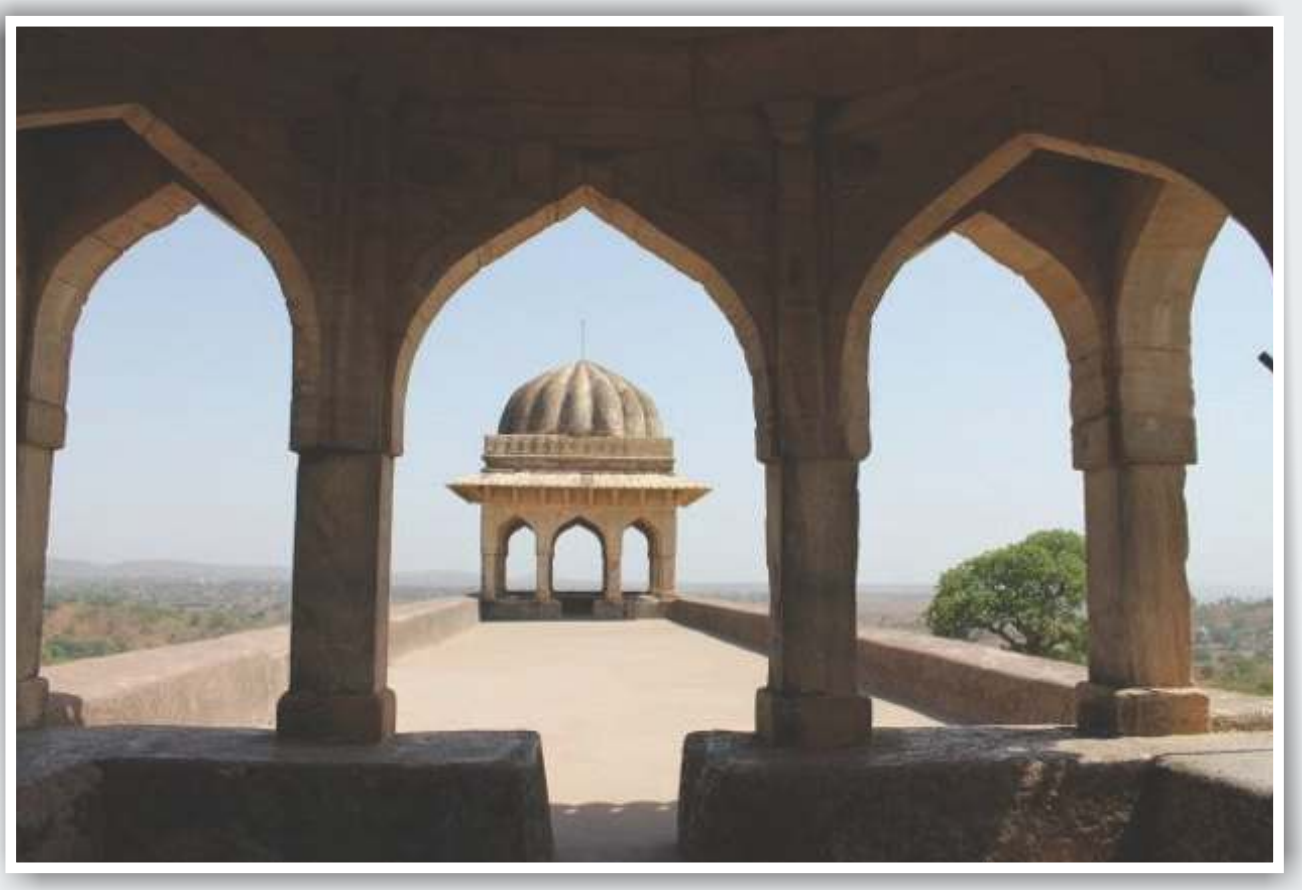

यह रानी रूपमति महल की छत है। यहाँ आई बरसात की हर एक बूँद को नालियों के माध्यम से नीचे कुण्ड में एकत्रित किया जाता था।

महाराजा के छप्पन महल के पास वाली बावड़ी को काली बावड़ी के नाम से जाना जाता था। इस महल की छत के पानी को इसमें संगृहीत किया जाता था। बावड़ी में 45 फीट पानी रहता है। गहराई के कारण पानी का रंग भी गहरा दिखता है - सो इसे काली बावड़ी का नाम दिया गया। छप्पन महल के सामने लोहानी गुफा क्षेत्र से बहकर आने वाले पानी को भी एक तालाब बनाकर रोका गया है। इसी तरह होशंगशाह के मकबरे के पास भी खारी बावड़ी है। मांडव में आप जैसे-जैसे इमारतों को देखते जाएंगे - जल प्रबंधन के नए-नए तरीके आपको दिखते जाएंगे... ! यहाँ का शाही महलों वाला इलाका भी सदियों पुराने दिलचस्प जल प्रबंधन से भरा पड़ा है।

जब हम जहाज महल में प्रवेश करते हैं तो इसका नाम सार्थक होता नजर आता है। इसके ओर मुंज तालाब है तो दूसरी ओर कपूर तालाब। मुंज तालाब का नाम धार के परमार शासकों में राजा मुंज के नाम पर है। वे तालाब बहुत रुचि के साथ बनाया करते थे। इस नाम से धार व उज्जैन में भी तालाब हैं। कपूर तालाब के बारे में किंवदंती है कि सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी की रानियों के स्नान के लिए यह तालाब काम में आता था। सुल्तान इसमें कपूर व अन्य जड़ी-बूटियाँ डलवाता था- ताकि इन रानियों के बाल सफेद नहीं होने पाएं।

दोनों तालाबों के बीच में महल - जहाज जैसा लगता है। यहाँ का सम्पूर्ण जल प्रबंधन भी अद्‌भुत है। जहाज महल में सूरजकुण्ड स्थित है। जहाज महल की छत का पानी सूरजकुण्ड में जाता था। इसके पूर्व फिल्ट्रेशन भी होता था। कपूर तालाब में वर्षा जल का पानी एकत्रित होता था। सूरजकुण्ड - कपूर तालाब व मुंज तालाब के बीच में है - सो यह स्टोरेज टैंक का भी काम करता। जब कपूर तालाब में पानी की जरूरत होती तो नाली प्रणालियों के माध्यम से पानी सूरजकुण्ड से कपूर तालाब में पहुँच जाता। इसी तरह तवेली महल का पानी भी नालियों के माध्यम से कपूर तालाब में चला जाता। यह तालाब काफी सुंदर है। आर्चेस बने हुए हैं। बीच में प्लेटफार्म भी है। सूरजकुण्ड मुंज तालाब के साथ भी इसी तरह जुड़ा है। शाही महलों का भीतरी जल प्रबंध भी कम दिलचस्प नहीं रहा है। यहां तालाबों से पानी रहट द्वारा एक खास ऊंचाई पर बने हौज में पहुँचाया जाता था। यहाँ से फोर्स के साथ पानी नीचे से ऊपर व आगे जाता था। पूरे पैलेस में भीतर ही भीतर ठण्डे व गरम पानी की रनिंग व्यवस्था थी। गरम पत्थरों के ऊपर से पानी को बहाया जाता था। यह पानी हमाम व स्वीमिंग पूल तक इस्तेमाल होता था। ... और तो और उस जमाने में स्टीम बाथ और सन बाथ की व्यवस्था भी कर रखी थी।

> **वैसा ही फिर हे वन-वासिनी**
> **लहरों में घिर आओ।**
> **गिरि चढ़ने से श्रांत पथिक को**
> **फिर जलगीत सुनाओं।**
> ● *कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल*

हिंडोला महल के पास चंपा बावड़ी बनी है। इसका आकार चंपा के फूल की तरह है। इसमें भी छत का पानी फिल्टर के बाद संगृहीत किया जाता था। यह तीन मंजिला और उस जमाने से वातानुकूलित बरामद वाली है। इस तरह की विशेषता महिदपुर की ताला-कुंची बावड़ी। इन्दौर की लालबाग वाली चंपा बावड़ी नरसिंहगढ़ की उमेदी बावड़ी और ब्यावरा की मंडी-बावड़ी सहित अन्य बावड़ियों में भी पायी जाती रही है। लेकिन, चम्पा बावड़ी की यह विशेषता है कि इसके भीतर से गुप्त रास्ते बने हुए हैं। बाहरी आक्रमण के समय रानियाँ - इसमें छलांग लगाकर गुप्त रास्तों से निकल जाया करती थीं। मुंज तालाब में जल महल भी बना हुआ है। पानी से घिरा हुआ। किंवदंती है कि रानियों की प्रसूति यहाँ हुआ करती थी। यहाँ भी छत का पानी संगृहीत होता था। यहीं बने हिंडोला महल में भी छत के पानी को बावड़ी में उतार दिया जाता था।

यहाँ से थोड़ी दूर गदाशाह महल के पास दो बावड़ियाँ और हैं - उजाली और अंधेरी बावड़ी। उजाली - 90 फीट गहरी है। यहाँ भी चमकीले पत्थर लगे हैं। यह भी तीन मंजिला है। गदाशाह महल (तत्कालीन समय में बाजार कॉम्पलेक्स) की छत का पानी फिल्टर के बाद इस बावड़ी में उतारा जाता था। नीचे से भी आव थी। इस पानी का सभी उपयोग करते थे। इसी के पास बनी है - अंधेरी बावड़ी। बाहर से तो यह किसी महल का आभास देती है। यह पूरी तरह ढंकी हुई है। गदाशाह के साथ व्यापारी यहाँ गर्मी के दिनों में ठण्डी का आनंद लेने के लिए बावड़ी में उतरा करते थे। इसमें भी तत्कालीन कॉम्प्लेक्स के एक हिस्से का छत वाला पानी संगृहीत किया जाता था। इस बावड़ी को सुरक्षा की दृष्टि से ढंका गया था - ताकि बाहरी आक्रमण के समय इसमें कोई विषाक्त पदार्थ न मिला दे।

...यहाँ एक बात और बता दें - धार से मांडव के बीच- 35 चौकियां बनी हुई थीं। वहाँ तालाब और बावड़ी की व्यवस्था कमोबेश इसी तर्ज पर की गई थी- ताकि यहाँ के सैनिकों को भी पानी के लिए कहीं भटकना न पड़े... !

...मांडव का - जितना लम्बा व समृद्ध इतिहास है, उतनी ही किंवदंतियां भी हैं। लेकिन, पानी से यहाँ के समाज का प्रेम प्रायः रियासत के हर काल में रहा है... ! और जब समाज का पानी से प्रेम खत्म हुआ तो ... मांडव ... खण्डहरों का शहर बन गया। कभी आबाद और बरसात के मौसम को छोड़कर यह अब वीरान रहने लगा... !

...पानी के अनुरागी समाज के लिए तो संभवतः मांडव... पानी और समाज को प्रेम कहानी की रूप में भी जाना जाएगा... ! !

● क्रांति चतुर्वेदी

नौ नदियाँ, निन्यान्वे नाले और पाल...!

नदियों पर जल संरक्षण की दो तस्वीर हैं। एक - कुछ सालों में भारत का सबसे बड़ा बांध (इसकी नहरों के नेटवर्किंग के आधार पर) बनकर तैयार !

दो - हम वक्त की सूइयों को सदियों पहले ले चलते हैं - आज के मुकाबले साधनों का अभाव - जग जाहिर...। पत्थरों की दीवार बनाकर अनेक नदियों, नालों का पानी रोक दिया - स्थल चयन भी तकनीकी दृष्टि से उत्तम। एक नदी को डायवर्ट कर दिया। ... संकल्प सफल हुआ - भारत ही नहीं, बल्कि एशिया का सबसे विशाल सरोवर तैयार... जिसने एक कहावत को जन्म दे दिया।! समय- आज से लगभग एक हजार साल पहले...! स्थान - भोजपुर (मध्यप्रदेश)।

बाँध निर्माण में मध्यप्रदेश के भोजपुर में मौजूद परम्परा - देश की प्राचीनतम जल संचय प्रणालियों का भाग रही है - मांडवगढ़ की सात सौ सीढ़ियाँ, उज्जैन का कालियादेह महल, और भोपाल के पास इस्लामनगर किले के पास बाँधों से पानी रोकने के प्रयास - इसके बाद की लघु परम्पराएँ मानी जा सकती हैं।

भोपाल से 25 कि.मी. दूर बसा है - भोजपुर। यहाँ भगवान शंकर का विशाल मंदिर है - भोजेश्वर मंदिर। इसमें शिवलिंग 24 फीट ऊँचा व 16 फीट मोटा है। मंदिर का प्रवेश द्वार भी विशाल। पूरा मंदिर एक खास शैली में बना हुआ। इस मंदिर का निर्माण परमारकालीन धार के राजा भोज ने (सन् 1010-1055) में बनवाया था। मंदिर के पास स्थित है - भारत के पारंपरिक जल संरक्षण तकनीक की एक उत्कृष्ट मिसाल...!

यहाँ बने बाँध का स्थल चयन खास तकनीक से किया गया था - जो आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी - एक हजार साल पहले के 'इंजीनियरों' के निर्णय को एकदम उचित ठहराती है। सरदार सरोवर के मुख्य बाँध स्थल केवड़िया की भाँति- यहाँ भी दो पहाड़ों ने काफी हद तक प्राकृतिक दीवार का काम किया। बाँध खास तरह के एक जैसे बने चट्टानी पत्थरों से बनाया गया था। ये पत्थर लगभग एक - आकार के कारण भी खास आकर्षण का केन्द्र हैं। ये 4 फुट लम्बे, 3 फुट चौड़े और ढाई फुट मोटे हैं। बाँध की दीवार का आश्चर्यजनक पहलू यह भी है कि चूना, मिट्टी, रेत आदि के मिश्रण वाली जुड़ाई भी नहीं की गई थी। बाँध की तीन स्तरीय दीवार बनाई गई ताकि पानी के बहाव के दबाव का झटका बाँध की मजबूती को नहीं लगे। इसकी विशालता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि यह 6500 वर्ग कि.मी. के बड़े क्षेत्र में फैला हुआ था। एशिया का सबसे बड़ा बाँध माना जाता था। इसी बाँध की वजह से इस कहावत ने जन्म लिया -

तालों में ताल भोपाल का बाकी सब तलैया ... यहाँ के पुराने लोगों का कहना है कि इस बाँध की वजह से भीमबेटका, सीहोर तक पानी ही पानी था। वर्तमान भोपाल भी इसी के तहत था। मंडीद्वीप एक पहाड़ी थी, जो पानी से घिरी होने के कारण 'द्वीप' के रूप में पहचानी जाती थी। कुछ और पहाड़ियाँ भी थीं, जो पानी के बीच सुन्दर दिखती थीं।

मालवा के सुल्तान होशंगशाह (1405-1435) ने इसे सन् 1430 में इसे तुड़वा दिया। कहते हैं, इसे तोड़ने के लिए तीन महीने तक सेना जुटी रही। तीन साल तक का वक्त पानी को खाली होने में लगा। तीस साल तक जमीन खेती के काम नहीं आ सकी थी। मालवा के सुल्तान होशंगशाह ने इस बांध को क्यों तुड़वाया - इसको लेकर अनेक किंवदंतियाँ हैं, लेकिन यह तय है कि एक बड़े भू-भाग की उपजाऊ जमीन अब समाज के पास है। यहाँ बेहतर खेती हो रही है। 60-70 फुट पर पानी निकल आता है।

... यहाँ एक बाँध तो तोड़ दिया गया, लेकिन एक अन्य बाँध जो इसी तरह पत्थरों से दो पहाड़ों के बीच खाली जगह को भरकर बनाया गया था - आज भी अपने मूल स्वरूप में मजबूती के साथ खड़ा है। यहाँ आने वाली कालियासोत नदी को डायवर्ट कर इस बाँध वाली बेतवा नदी में डाला गया था !

... नदी को डायवर्ट करना और बाँध बनवाने के पीछे आखिर कारण क्या था ?

... इसके पीछे मुख्य रूप से दो किंवदंतियाँ प्रचलित हैं - बाँध की कहानी के लिए इन्हें भी जानना जरूरी है।

भोजपुर में प्रचलित किंवदंती - यहाँ के मूल निवासी बाँध स्थल के पास रहने वाले श्री

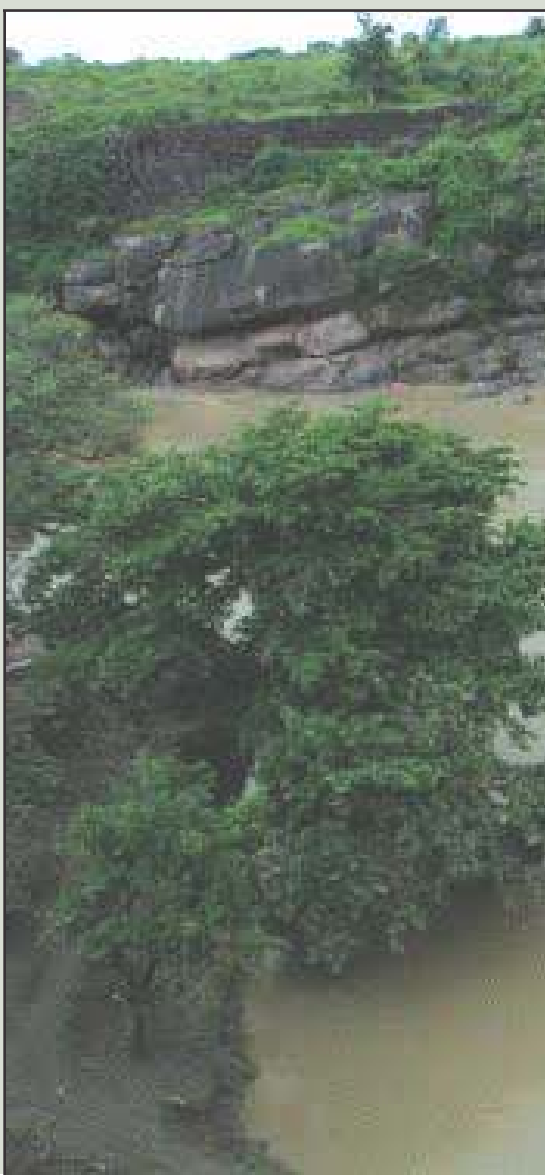

हरिओम के मुताबिक - राजा भोज ने पुत्र रत्न की प्राप्ति के लिए विद्वानों को बुलाया और उनके विचार जाने। राजा को कहा गया कि आप उस स्थान पर तालाब बनवा दें - जहाँ 9 नदियाँ और 99 नाले मिलते हों। वहीं भगवान शंकर का भी मंदिर बनवा दें। दोनों पति-पत्नी यहाँ स्नान कर भगवान शंकर का अभिषेक करेंगे तो उन्हें संतान प्राप्ति हो जाएगी। इसके लिए राजा ने प्रयास शुरू किये। गंगा-जमुना में भी कोशिश की गई - लेकिन वहां तो सैकड़ों नदियाँ मिलती हैं - 9 का आंकड़ा नहीं मिल पाया। ढूँढ़ने के बाद भोजपुर का यह स्थान तय कर लिया गया। यहाँ बांध बनाया गया। एक नदी कम पड़ रही थी। चामुण्डा माता मंदिर के स्थान पर आ रही कालियासोत नदी को दीवार उठाकर रोका और इस तरफ डायवर्ट कर इस संगम में उसे भी मिला दिया। स्थानीय लोगों ने 9 नदियों में शामिल सात नाम इस प्रकार बताए- बेतवा, कालियासोत, अजनार, भुंसी, गोदर, केरवा, सनोटी आदि! कहते हैं, बांध के निर्माण के बाद राजा-रानी ने स्नान किया और भोज दम्पति के यहाँ राजा विक्रम भोज के रूप में पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। जबकि ख्यात इतिहास और पुरातत्वविद् डब्ल्यू. किनकैड ने इस बाँध का व्यापक सर्वेक्षण करने के बाद उनकी जानकारी में आई किंवदंती का उल्लेख यूँ किया - राजा भोज एक बार बहुत बीमार पड़ गए और वैद्य लोग उनका इलाज न कर पाए। एक साधु ने भविष्यवाणी की कि अगर राजा भारतवर्ष में ऐसा सबसे बड़ा तालाब बनाते हैं, जिसमें 365 झरनों का पानी जमा होता है तो वे इस रोग से मुक्ति पा लेंगे अन्यथा उनकी मृत्यु भी हो सकती है... ! राजा ने अपने कर्मचारियों से क्षेत्र का व्यापक सर्वे कराया। अंततः भोजपुर के पहाड़ी क्षेत्र में ऐसा स्थान मिला। लेकिन यहाँ 356 झरनों का ही पानी बह रहा था। सब लोग परेशान हो गए। गोंड सरदार कालिया ने राय सुझाई कि एक लुप्त नदी है, जिसकी सहायक नदियाँ - अपेक्षित संख्या को पूरा करती हैं। दरअसल, यह नदी थोड़ी दूर ही बह रही थी। इसका नाम ही कालियासोत रख दिया। इसे ही डायवर्ट कर लाया गया और तब जाकर यह संख्या पूरी हुई।

पुरातन समाज में व्याप्त किंवदंतियाँ अपवादों को छोड़कर प्रायः प्रेरणास्पद संदेश ही देती हैं - यह भी संभव हो - तत्कालीन समय के राजाओं ने भी अपनी सूझबूझ के साथ बेहतर निर्णय लिए हों - और कालान्तर में ये किंवदंती के रूप में समाज के सामन आए हों! लेकिन राजा भोज ने तो 'पाल' बनाकर कमाल कर दिया था - इसी दीवार को 'भोजपाल' नाम दिया गया।... और भोजपाल की वजह से ही मध्यप्रदेश की राजधानी का नाम 'भोपाल' पड़ गया... ! यह खुशी की बात है कि पहाड़ियों में बसे खूबसूरत शहर - भोपाल के तालाब - इस शहर की खास पहचान बने हुए हैं - जो यहाँ की सदियों पुरानी तालाब परम्परा के वाहक हैं।

'भोजपाल' की टूटी दीवार - खण्डहरों के रूप में आज भी मौजूद है और पानी संचय की दृष्टि से देखने जाने वाले समाज से 'बतियाती' है। मानो... वह कहती है ... सदियों पहले, आज के मुकाबले कोई अत्याधुनिक सुविधा न होने के बावजूद तत्कालीन राजा, समाज और 'निपुण इंजीनियरों' ने मुझे बनाया। क्या आज यह चमत्कार नहीं लगता है... ! तब कौन-से इंजीनियरिंग कॉलेज थे और कौन-सी किताबें थीं - था तो केवल अपने परिवेश से प्यार और पानी संरक्षण का ईश्वर द्वारा दिया वही परम्परागत ज्ञान जो आज भी आम आदमी के भीतर है, भले ही छिपा हुआ... !

... यहाँ आने के बाद संकल्प ले सकते हैं कि उन अनजान अनेक 'बाँध-निर्माताओं' को प्रणाम.... हमें पानी संरक्षण की परम्परा को कायम रखने की सद्बुद्धि दें .... !!

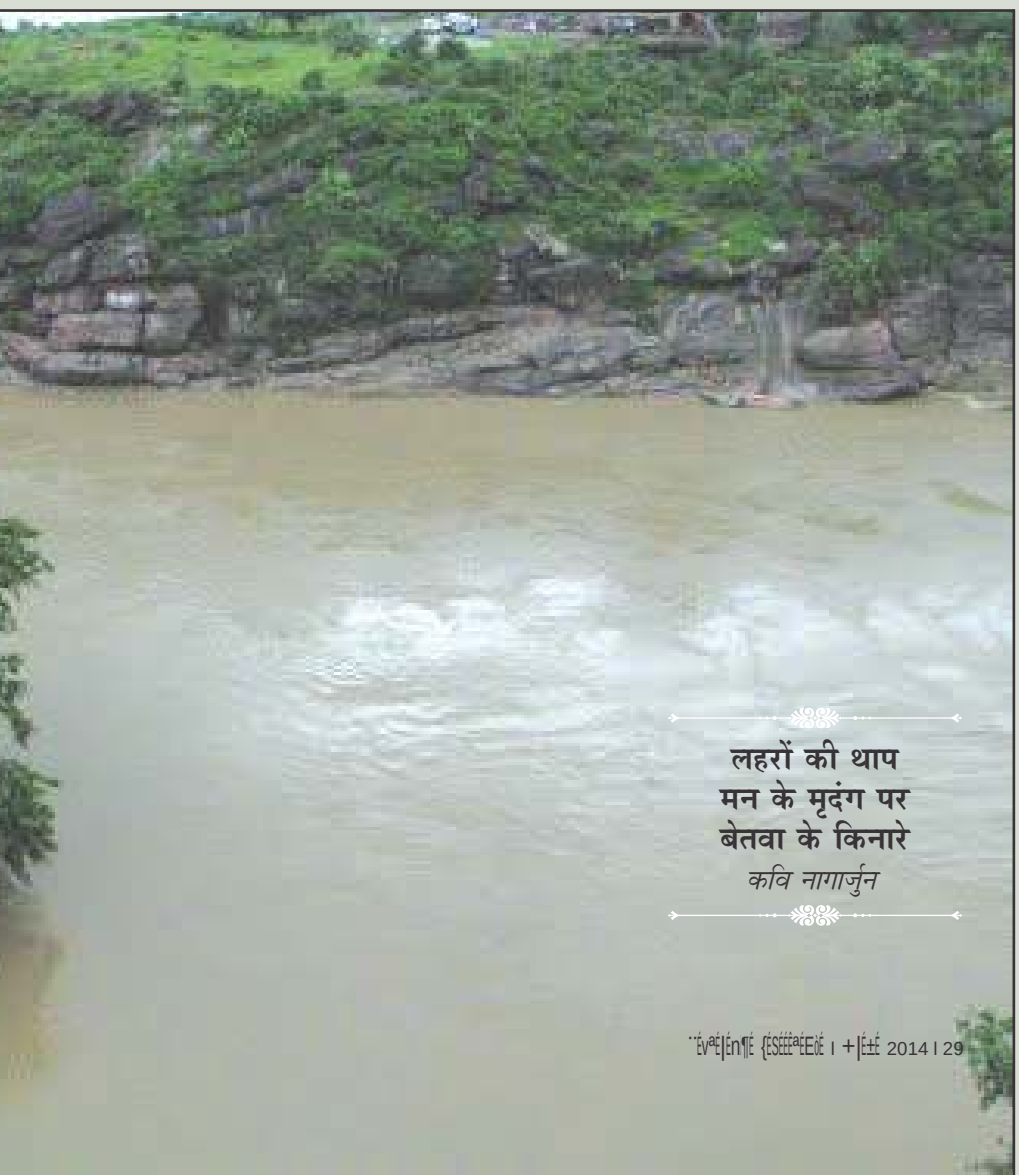

बूंदों का भूमिगत ताजमहल

मुगल-बादशाह शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज महल की याद में आगरा में ताजमहल बनाया। कहते हैं, दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं-एक, जिन्होंने इस प्रेम स्मारक को देखा है। दो - जिन्होंने इसे नहीं देखा है... !

...मुमताज महल का इंतकाल मध्यप्रदेश के बुरहानपुर में ही हुआ था...।

... मुगलकाल में बुरहानपुर में बनाए जल प्रबंधन प्रणाली के 'ताजमहल' खूनी भण्डारा व अन्य के बारे में भी यही कहा जा सकता है !

जनाब, वाकई अद्‌भुत 'इंजीनियरिंग' रही है, बनाने वाले उस समाज की जिन्होंने इंजीनयरिंग का क, ख, ग नहीं पढ़ा होगा! कहते हैं, भारत में जल प्रबंधन की यह अनूठी प्रणाली है। ईरान में तेहरान के पास अवश्य इससे मिलती-जुलती प्रणाली के माध्यम से पानी प्रबंधन होता रहा है। यह प्रणाली वहां आज भी अस्तित्व में है।

बुरहानपुर का यह मुगलकालीन जल प्रबंधन इस अवधारणा पर कार्य करता है - सतपुड़ा की पहाड़ियों से रिसकर पानी की 'अन्तर्धारा' आगे बढ़ते हुए ताप्ती नदी में मिलती है। जल प्रबंधन कार्यक्रम एक बुनियादी सिद्धांत पर काम करता है - 'रिज टू वेली' - याने पहाड़ी से घाटी की ओर। इस जा रही पानी की अन्तर्धाराओं को पहले जमीन के भीतर ही बने 'भण्डाराओं' में रोका गया। वहां से सुरंगों के माध्यम से इन्हें करंजों यानी हौज में लाया जाता है। वहां से छोटी केनाल या नालियों के माध्यम से शहर में पानी सप्लाई किया जाता रहा, जो बाद में बहते हुए ताप्ती में मिल जाता है।

...बुरहानपुर के जल प्रबंधन की इसी कहानी को सिलसिले से जानना, जल सुरंगों में उतरना और पानी के जमीन के भीतर के सफर का साक्षी बनना, कम कौतूहल का विषय नहीं है... !

... बात सोलहवीं सदी के प्रारंभिक दौर की है। अकबर ने बुरहानपुर पर कब्जे के बाद अपने बेटे दानियाल को यहां की सत्ता सौंप दी। यहाँ का सूबेदार अब्दुल रहीम को बनाया गया। रहीम और पानी का संबंध - पूरा देश उनके इसी दोहे से जानता है -

रहिमन पानी राखिए। बिन पानी सब सून।
पानी बिना न ऊबरे। मानस, मोती चून।।

बुरहानपुर के ख्यात इतिहासवेत्ता और दार्शनिक डॉ. मोहम्मद शफी के अनुसार- 'मेरा मानना है कि रहीम ने यह दोहा बुरहानपुर में यहाँ पानी के संकट के चलते ही लिखा होगा।' बहरहाल, कहा जाता है कि उस समय यहाँ शहर में पानी की भारी किल्लत थी। हालांकि, ताप्ती नदी पास ही बहकर निकलती थी - लेकिन, यह कहा जाता है कि यह नदी अन्य दूरस्थ स्थानों से होकर आती थी। यहाँ के रियासतदारों को यह चिंता सताए रहती थी कि यदि युद्ध के दौरान किसी ने नदी के पानी में विषाक्त पदार्थ मिला दिया तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। रहीम पानी के नए प्रबंधन की खोज में जुट गए। सतपुड़ा की पहाड़ियों के तराई क्षेत्र में खुदाई के दौरान उन्होंने देखा कि पानी की जबरदस्त अन्तर्धाराएं बह रही हैं। इसका वेग भी अच्छा है। पानी का स्वाद भी मीठा है। इससे स्नान के बाद ताजगी का अहसास होता है। इसका कारण साफ है कि यह पानी पहाड़ी के उन हिस्सों से सफर करके आता है, जहाँ प्रचुरता में जड़ी-बूटियाँ पायी जाती हैं। इसके बाद ही यह निर्णय ले लिया गया था कि इस पानी को विशिष्ट तरह के प्रबंधन के साथ उपयोग में लाना है। यह ईरान के पास तेहरान में मध्यकालीन जल संचय प्रणाली की तर्ज पर बनाई गई। मुगलों का ईरान से निकटतम नाता रहा है। वहाँ इस प्रणाली को 'कनात' के नाम से जाना जाता है। वहाँ पीने के पानी के अलावा सिंचाई साधनों में भी इस प्रणाली का उपयोग होता है। प्रणाली का सबसे मूल भाग भण्डारे हैं। सतपुड़ा की पहाड़ियों के भीतर से बहने वाले पानी को चार भण्डारों में रोका गया। इनका नाम है - सूखा भण्डारा, मूल भण्डारा, चिताहरण भण्डारा और खूनी भण्डारा। ये भण्डारे शहर के मुकाबले कुछ ऊँचे स्थान पर बनाए गए थे ताकि गुरुत्वाकर्षण के नियम के साथ पानी का प्रवाह बना रहे। इन भण्डारों से पानी जल सुरंगों के माध्यम से करंजों याने हौज में पहुँचाया जाता

था। जल सुरंगें खास स्टाइल से बनाई गई हैं। इनमें से घोड़े पर सवार व्यक्ति भी क्रॉस हो सकता है। इन सुरंगों पर वायुकूपक बनाए गए हैं। स्थानीय समाज इन्हें कुण्डियों के नाम से जानता है। इन कुण्डियों से ऊपर से रस्सी डालकर अनेक स्थानों पर आज भी पीने का पानी लिया जाता है। इन कुण्डियों से पानी को हवा और रोशनी मिलती रहती है। कुण्डियों के लगभग 10 मीटर नीचे पानी एकत्रित होता रहता है। कुण्डियों के बीच की दूरी 20 से 30 मीटर के लगभग है। कुण्डियों की तरह भण्डारे भी खास आकर्षण रखते हैं। सूखा भण्डारा बुरहानपुर से 10 कि.मी. दूर है। यह भूमिगत जलाशय है, जो सतह से 30 मीटर नीचे बना है। चूना-गारे की एक मीटर मोटी दीवार भी बनाई गई है। पानी रिस-रिसकर यहाँ एकत्रित होता रहता है। मूल भण्डारा भी 10 कि.मी. दूर लालबाग की दिशा में नाले के पास स्थित है। इसकी गहराई 15 मीटर है। यहाँ से पानी भूमिगत पुलों द्वारा आगे जाकर चिताहरण का पानी लाने वाली सुरंग में आकर मिलता है। मूल से भूमिगत सुरंगों द्वारा महल और नगर के मध्य भाग में जलापूर्ति की जाती थी।

चिताहरण जलाशय भी मूल भण्डारा के पास एक मौसमी नाले के पास स्थित है। इतिहासविद् डॉ. मोहम्मद शफी के अनुसार - 'बड़ी चट्टान पर एक चित्र उकेरा हुआ नजर आता है। इसमें एक नहर बह रही है। एक ओर चीता व दूसरी ओर हिरण पानी पी रहा है। संभवतः इसीलिए लोगों ने इसका नाम चिताहरण रख दिया।' यह 80 मीटर का जलाशय है। गहराई लगभग 20 मीटर है। यहाँ से भी भूमिगत सुरंगों द्वारा पानी आगे जाता था। इन सुरंगों पर भी कुण्डियाँ बनी हुई हैं। मुगलों के समय इससे बुरहानपुर शहर में पानी जाता था। अंग्रेजों के समय इस व्यवस्था में फेरबदल करके सुरंगों द्वारा इसे मूल भण्डारे की सुरंगों से जोड़ा गया था।

एक और महत्वपूर्ण भण्डारा है - खूनी भण्डारा। बुरहानपुर के इस मुगलकालीन जल प्रबंधन को लोग प्रायः 'खूनी भण्डारा' के नाम से ही जानते हैं। डॉ. मोहम्मद शफी कहते

खूनी भण्डारे में पानी की भूमिगत नालियाँ

हैं - 'हमारा ऐसा अनुमान है कि इसका नाम खूनी भण्डारा इसलिए पड़ गया होगा, क्योंकि यह बुरहानपुर रूपी शरीर के लिए उसी भूमिका में है, जिस तरह मानव-शरीर में खून की भूमिका होती है। यदि खून नहीं है तो जिस्म कैसे काम करेगा। यह भाव तत्कालीन समय में इस सम्पूर्ण जल प्रबंधन प्रणाली की महत्ता को भी दर्शाता है।' ...हम इस समय खूनी भण्डारे के हौज के ऊपर खड़े हैं। यह सतपुड़ा पर्वतमाला की तराई में स्थित है। इस हौज व कुण्डी नंबर एक में सतपुड़ा की पहाड़ियों से पानी रिस-रिस कर आता है। यहाँ घुटने-घुटने तक पानी प्रायः रहता है। कुछ आगे जाकर पानी 5 से 6 फीट तक भरा रहता है। पानी की इस प्रणाली को भारत एवं विदेशों के भी अनेक जल विशेषज्ञ देख चुके हैं। खूनी भण्डारे से जुड़ी सुरंगों में कुल 103 कुण्डियाँ बनी हुई हैं। तीनों भण्डारे सुरंगों के माध्यम से आपस में मिले हुए हैं। कुण्डियों में रोशनी और हवा सुरंगों में बहते पानी को लगातार मिलती रहती है। हवा का दबाव भी बना रहता है, जिससे पानी आगे बढ़ता रहता है। चार नम्बर की कुण्डी में तत्कालीन समय में नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। इसे नगर निगम ने पुनः बनाया है। कुण्डी नम्बर एक और हौज की दीवारों के साथ-साथ जमीन से भी पानी आता रहता है। इसे स्थानीय लोग पाव से पानी आना कहते हैं। यहाँ के पानी की शुद्धता की जाँच में यह परिपूर्ण पाया गया है कि इसे पीने से भूख तेज लगती है। यह सेहत के लिए स्वास्थ्यवर्धक है। बीच में यह पानी केवल कुछ कुण्डियों तक ही जाता था। कचरे व मिट्टी के कारण जल मार्ग अवरुद्ध हो गया था। सफाई अभियान 103 नम्बर की कुण्डी से प्रारंभ किया गया। इस पूरी प्रक्रिया जिसमें मरम्मत भी शामिल है, पूरे डेढ़ साल लग गए। इन सुरंगों से होता हुआ पानी जाली करंज में एकत्रित होता है। बुरहानपुर में मुगलकाल के दौरान इस पूरे सिस्टम के लिये 17 करंज बनाए गए थे। यहां चारों भण्डारों का पानी आकर एकत्रित होता था। जाली के थोड़ी दूर बने करंजे को मारुति करंजे के नाम से जानते हैं। यह पानी पाइपों के माध्यम से यहाँ से नगर के विभिन्न हिस्सों में जाता था।

तत्कालीन समय में पानी की उपलब्धता 8 या 10 फीट पर इस इलाके में आसानी से हो जाती होगी। जल प्रवाह का वेग भी तेज रहा होगा। इतनी गहराई तक खुदाई, करंजे-सुरंगें बनाना, कुण्डियाँ तैयार करना - सभी काम चुनौती भरे होंगे। बुरहानपुर शहर में अभी भी कुछ 'टॉवर' खड़े हैं, जो जल वितरण व्यवस्था को सुचारु संचालित बनाए रखने के लिए लगाए गए थे। इनसे जा रही हवा का दबाव भी पानी को वितरित करने में मददगार साबित होता था। ये टॉवर मीनार के रूप में लगाए गए थे। इन्हें इस तरह बनाया गया था कि भीतर रोशनी पहुँचती रहे। इसके भीतर की संरचना बंदूक की नली के भीतरी हिस्से जैसी रही। ऊपर से आई हवा - राउण्ड में नीचे पहुंचती थी। 1977 में कुछ-एक कुण्डियों के धंसने के बाद इस तंत्र से जल वितरण व्यवस्था गड़बड़ा गई थी। ताप्ती व उतावली नदी में बोर करके पानी प्राप्त किया जाने लगा था। हालांकि, अब भी शहर के कुछ हिस्सों में पुराने तंत्र से पानी उपयोग में लाया जाता है। खूनी भण्डारे से गई सुरंगों की कुण्डियों से लोग पानी उलीचकर ले जाते हैं। यहाँ यह उल्लेख भी लाजिमी है कि इसी तंत्र से विभक्त करके इसी तरीके से बुरहानपुर से 16 कि.मी. दूर बहादुरपुर में भी पानी पहुँचाया जाता था। हालांकि, वहाँ अब उसके अवशेष भी बमुश्किल दिखते हैं।

सुनो कहानी एक थी धरती, उसमें था पानी

इस धरती के हर प्राणी के लिए पानी निहायत ही जरूरी है। इसके बिना जीवन संभव नहीं बावजूद इसके, साफ-स्वच्छ पीने के पानी तक लोगों की पहुँच आसान नहीं है। जिनके पास आर्थिक सामर्थ्य है, वे कहीं बोतलों में तो कहीं बड़े-बड़े कैन में मिनरल वॉटर के रूप में पानी खरीद लेते हैं। उनके लिए निजी टेंकर का पानी भी उपलब्ध है। जिनकी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें कुदरत के इस मुफ्त संसाधन तक पहुँचने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। हर साल गर्मी आते ही मध्यप्रदेश के तकरीबन हर जिले में पानी के लिए मारामारी का यही नजारा देखने को मिलता है, कोसते हैं और बारिश आते ही सारी तकलीफें भूलकर फिर पानी बहाने लग जाते हैं। लेकिन साफ पेयजल के लिए इंतजार अब दो माह तक ही लंबा नहीं रहेगा। हमारा देश दुनिया की 17 फीसदी आबादी को समेटे हुए है, लेकिन पानी उपलब्ध है सिर्फ 4 फीसदी। इसी चार फीसदी पानी ने बीते 5000 सालों से हमारी सभ्यता और संस्कृति का पोषण किया है। हमारे खेतों को सींचा, हरे-भरे जंगल दिए। हमारे समूचे जीवन चक्र में रचा बसा होने के बाद भी हम इसे कुदरत की नेमत मानने की बजाय खैरात समझते रहे। हम भूल गए कि धरती के 70 फीसदी हिस्से पर पानी होने के बाद भी उसका सिर्फ एक फीसदी हिस्सा ही इंसानी हक में है। नतीजतन स्थिति यह है कि जलस्रोत तेजी से सूख रहे हैं। भारत ही नहीं, समूचे एशिया में यही स्थिति है, क्योंकि इस महाद्वीप में दुनिया की 60 फीसदी आबादी महज 36 फीसदी जल संसाधनों पर निर्भर है। बाकी सभी महाद्वीपों में जल संसाधनों के मुकाबले आबादी का अनुपात कहीं कम है।

इंसानी संस्कृति में पानी का योगदान अहम है। दिनचर्या के प्रत्येक हिस्से में पानी कहीं न कहीं मौजूद रहता है। औद्योगिक क्रांति की दहलीज पर कदम रख चुका हमारा समाज असल में ग्रामीण परिवेश का आदी रहा है, यहां पीने के पानी से लेकर निस्तार तक के लिए लोग नदियों, कुओं पर निर्भर हुआ करते थे। तकरीबन हर दो-तीन मकानों के बीच एक कुआं हुआ करता था। गाँव से एक किलोमीटर से भी कम दूरी पर बावड़ियाँ होती थीं, जिसका पानी पशुधन की प्यास बुझाने और निस्तार के काम आता था। हफ्तों और कभी-कभी तो महीनों तक की लंबी यात्राएँ बैलगाड़ियों, घोड़ों पर या पैदल ही हुआ करती थीं, लिहाजा लोगों का हुजूम पड़ाव वाले स्थलों पर कुएं, बावड़ियां खुदवाता था। ये काम कभी धर्म से जोड़कर देखे जाते थे। साफ-सफाई हमारे संस्कारों का अहम हिस्सा रहे हैं और इसमें भी पानी की जरूरत पड़ती ही है। पर अब हमारा जीवन यंत्रीकृत हो चुका है। हम नल और हैंडपंप, बोरवेल पर निर्भर हैं। सरकारी सप्लाई पर आधारित पानी की इस उपलब्धता का हमारे दिल में शायद ही कोई सम्मान है। दैनिक जीवन में हम लगातार पानी बर्बाद करते हैं। कहीं टपकते नल के साथ तो कहीं गुसलखाने और रसोईघर से निकले पानी को यूं ही गंवाकर हम घटते जा रहे इस बेशकीमती संसाधन के प्रति अनादर जताते हैं। यह इसलिए भी है, क्योंकि पानी का किफायती इस्तेमाल अब हमारी परवरिश का हिस्सा नहीं रहा। पानी हमारे आसपास इफरात में उपलब्ध था। समाज को कभी नहीं लगा कि किसी समय इसकी भी राशनिंग होगी और लोगों को साफ पेयजल के लिए दर-दर भटकना होगा।

पानी पर हमारी निर्भरता सबसे ज्यादा कृषि कार्यों के लिए है। साल के पांच छह माह

हमारा जीवन यंत्रीकृत हो चुका है। हम नल और हैंडपंप, बोरवेल पर निर्भर हैं। सरकारी सप्लाई पर आधारित पानी की इस उपलब्धता का हमारे दिल में शायद ही कोई सम्मान है। दैनिक जीवन में हम लगातार पानी बर्बाद करते हैं। कहीं टपकते नल के साथ तो कहीं गुसलखाने और रसोईघर से निकले पानी को यूं ही गंवाकर हम घटते जा रहे इस बेशकीमती संसाधन के प्रति अनादर जताते हैं। यह इसलिए भी है, क्योंकि वर्तमान परिवेश में पानी का किफायती इस्तेमाल हमारी परवरिश का हिस्सा नहीं रहा। पानी हमारे आसपास इफरात में उपलब्ध था। समाज को कभी नहीं लगा कि किसी समय इसकी भी राशनिंग होगी और लोगों को साफ पेयजल के लिए दर-दर भटकना होगा।

जमकर बारिश हो जाए तो 4000 करोड़ घनमीटर पानी इकट्ठा हो जाता है। इसमें से 1000 करोड़ घनमीटर भाप बनकर उड़ जाता है। बाकी बचे 3000 करोड़ घनमीटर पानी में से 800 करोड़ घनमीटर पानी इस्तेमाल योग्य नहीं होता, लिहाजा 2200 करोड़ घनमीटर पानी ही काम में लाया जा सकता है। इसका तकरीबन 85 प्रतिशत खेती में इस्तेमाल होता है, बाकी 10 फीसदी उद्योगों और पाँच फीसदी घरेलू कार्यों में इस्तेमाल होता है।

आने वाले एक दशक में उद्योगों के लिए पानी की जरूरत 23 फीसदी के आसपास होगी। तब खेती के लिए पानी के हिस्से में कटौती करने की जरूरत पड़ेगी, क्योंकि तेजी से बढ़ रहे शहरीकरण के चलते गाँवों के मुकाबले शहरों को पानी की दरकार कहीं ज्यादा होगी। एक अनुमान के मुताबिक 2025 तक देश की 55 फीसदी आबादी शहरों में बसेगी, मतलब पानी की बर्बादी अभी से कहीं ज्यादा होगी। सबसे ज्यादा चिंता की बात यह है कि देश में उपलब्ध जल संसाधनों के उपयोग में सालाना 5-10 प्रतिशत ही बढ़ोतरी हो सकी है, जबकि मौसमी बदलाव के चलते इससे दोगुनी मात्रा में जल संरचनाएँ नष्ट हो रही हैं। बढ़ते तापमान और जल प्रबंधन की खामियों के चलते सिकुड़ती जल संरचनाओं से गर्मी में इतना पानी भाप बनकर नहीं उड़ पा रहा है कि बारिश अच्छी हो। इसी के साथ वनों के घटने से भी पर्यावरण को जबरदस्त नुकसान उठाना पड़ रहा है। सघन वन वाष्पीकरण बढ़ाते हैं, जैव संतुलन कायम करते हैं। फारेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया की रिपोर्ट बताती है कि मध्यप्रदेश में अब 77,700 वर्ग किलोमीटर में ही जंगल बचे हैं। साफ है कि 17,300 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में जंगल साफ हो गए। देश में औद्योगिक इकाइयां करीब 10 करोड़ घनमीटर साफ पानी का इस्तेमाल करती हैं, लेकिन मशीनों को ठंडा रखने के लिए इससे तीन गुना ज्यादा, यानी 30 करोड़ घनमीटर पानी इस्तेमाल में लाया जाता

है। इस तरह 40 करोड़ घनमीटर पानी उद्योगों को जा रहा है, जो कि 2025 तक बढ़कर 228 करोड़ घनमीटर हो जाएगा। इस जरूरत को पूरा करने के लिए अब यदि खेती के लिए उपलब्ध पानी में कटौती की जाए तो खाद्य संकट की स्थिति पैदा हो सकती है। ऐसा इसलिए भी होगा, क्योंकि हमारी कृषि में बाकी देशों के मुकाबले कहीं ज्यादा पानी की जरूरत पड़ती है।

एक अनुमान के अनुसार, सिंचाई के लिए प्रति हेक्टेयर 30 फीसदी पानी बर्बाद हो जाता है। स्प्रिंकलर या ड्रिप इरीगेशन प्रणाली पानी की बर्बादी तो रोकती है, किसानों में नकदी फसलों को बढ़ावा देना भी जलसंकट का एक बड़ा कारण है। कपास की फसल में सबसे ज्यादा पानी की जरूरत पड़ती है। मालवा और निमाड़ अंचलों में भू-जल स्तर में भारी गिरावट के पीछे यह भी एक बड़ा कारण है। यही हाल जैव संवर्द्धित व निजी कंपनियों के संकर प्रजाति की फसलों, जैसे- मक्का के लिए भी है, जिसमें परंपरागत फसल की तुलना में तीन गुना ज्यादा पानी की जरूरत पड़ रही है। परंपरागत सिंचाई पद्धति को अपनाकर ऐसी फसलों से भरपूर पैदावार नहीं ली जा सकती। इसके लिए आधुनिक जलप्रबंधन तकनीक को अपनाने और मौजूदा जलसंसाधनों के अधिकतम इस्तेमाल की जरूरत है।

पानी की बर्बादी जैसा ही चिंताजनक मामला पानी के बढ़ते बाजार को लेकर भी है। हमारे समाज में प्यासे को पानी पिलाना हमेशा पुण्य का काम माना जाता रहा है। गर्मी के मौसम में शहरों से लेकर गाँव तक के रास्ते में जगह-जगह प्याऊ नजर आते थे, जहाँ धार्मिक संस्थाओं के लोग मटकों में ठंडा पानी भरकर रखते थे। लोग पशु-पक्षियों को भी पानी पिलाते रहे हैं। लेकिन अब तो बाजार हमें पानी पिला रहा है। कहीं बोतलों में तो कहीं अमानक पाऊचों में, वह भी पाँच गुने मुनाफे के साथ। लोग भी पानी के लिए धड़ल्ले से अपनी जेब ढीली कर देते हैं। इसलिए, क्योंकि सरकार पानी पर न तो सबका मौलिक अधिकार कायम कर सकी है और न ही पहुँच बना पाई है। लोगों को अपने घर के नल में बहते पानी की गुणवत्ता पर यकीन नहीं है। घर से बाहर निकले तो रास्ते में कहीं पानी उपलब्ध नहीं होगा, लिहाजा लोग मिनरल वॉटर के तौर पर बोतलबंद पानी पर ही भरोसा करते हैं। इसके लिए कहीं 15 तो कहीं 20 रुपये तक चुकाने पड़ते हैं। जिनकी इतनी हैसियत नहीं, वे पाऊचों के अमानक, संक्रमित पानी पर निर्भर रहते हैं।

एक और बाजार है टैंकरों से पानी बेचने का। अकेले राजधानी भोपाल में करीब 500 टैंकर दिन-रात भूजल स्रोतों से पानी इकट्ठा कर बस्तियों में बेचते हैं। यह सिलसिला गर्मी में ही नहीं, बल्कि सालभर चलता रहता है। जल स्रोतों का निजीकरण, जलापूर्ति व्यवस्था को निजी हाथों में सौपने जैसे मंतव्य व्यक्त कर हमारा तंत्र पानी को बाजार के हवाले करने की तैयारी में दिखाता है। कुल मिलाकर हमें पानी की बढ़ती अहमियत को समझकर समुदाय स्तर पर संसाधन विकसित करने होंगे। पानी हमारी दिनचर्या का अहम हिस्सा है, सो कोशिश यही होनी चाहिए कि बहने वाली हर बूंद कहीं न कहीं हमारे उपयोग में आ सकें।

● सौमित्र रॉय

लापोड़िया : जहाँ पहुंचकर चकरा जाता है अकाल

नदी को हम दो किनारों के बीच बहती धारा के रूप में नहीं देख सकते। इसका अपना विस्तृत वृहद संसार है। इसके जलग्रहण क्षेत्र में बहुत से अवयवों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गोचर इनमें से एक है। राजस्थान के अकाल पीड़ित इलाके में एक संस्था ने समाज के सहयोग से साल भर हरे भरे रहने वाले गोचर की व्यवस्था कैसे की है, इसका खूबसूरत वर्णन किया है, गांधीवादी चिंतक व जाने माने पर्यावरणविद श्री अनुपम मिश्र ने अपनी पुस्तक 'गोचर का प्रसाद बांटता लापोड़िया' में। इसी के संपादित अंश यहां प्रस्तुत हैं -

जयपुर जिले के एक छोटे से गांव लापोड़िया के लिए सन् 2004 का मतलब था - 4 और 2 यानी 6 साल का अकाल। आसपास के बहुत सारे गांव इस लंबे अकाल में टूट चुके थे, लेकिन लापोड़िया आज भी अपना माथा उठाए मजबूती से खड़ा हुआ है। लापोड़िया का माथा घमंड के बजाय विनम्र दिखता है, उसने 6 साल के अकाल से लड़ने के बजाय उसके साथ जीने का तरीका खोजने का प्रयत्न किया है। इस लम्बी यात्रा ने लापोड़िया गांव को अपनी जमीन में छिपी जड़ों तक पहुंचाया है। इन जड़ों ने ऊपर के अकाल को भूलकर जमीन के भीतर छिपे पानी को पहुंचाने के लिए कड़ी मेहनत की है और इसी मेहनत के बल पर आज 6 साल के अकाल के बावजूद लापोड़िया को ग्रामवासियों ने अपने पसीने से सींच कर हरा-भरा बना रखा है।

अपनी जड़ों को पहचानना : अपनी जड़ों को पहचानने और उन्हें तलाशने की यह यात्रा बहुत लंबी रही है। प्रकृति में कोई भी काम बिना धीरज के फल नहीं देता। बहुत पहले लापोड़िया गांव भी टूट चुका था, उसके खेत उजड़ गए थे, उसका गोचर सूख गया था गोचर पर यहां-वहां कब्जे हो चले थे और उसके दो पुराने तालाब भी पाल टूटने के कारण नष्ट हो गए थे। लापोड़िया के लोगों ने इस बुरे दौर में गांव से 80 किलोमीटर दूर जयपुर जैसे शहर में धीरे-धीरे पलायन कर खुद को बचाने का प्रयास किया था। कभी जो परिवार इस पूरे गांव की व्यवस्था संभालता था, अब इस बुरे समय में उसके सबसे अच्छे सदस्य भी लापोड़िया छोड़कर कहीं और नौकरी करने चले गए थे। इन्हीं में से एक थे- लक्ष्मण सिंह।

सन् 1988 में वे इसी प्रदेश के अलवर जिले में काम प्रारंभ कर रही संस्था 'तरुण भारत संघ' में जा पहुंचे जहां उन्होंने राजेन्द्र सिंह के साथ काम करते हुए अकाल से उजड़े गांव में पानी का छोर पकड़कर जीवन की खुशी लाने का रहस्य जानना शुरू किया। लेकिन फिर उनको लगा कि इस रहस्य की बाकी परतें खोलने का प्रयोग उन्हें अपने उजड़े गांव में ही लौटकर करना चाहिए। लक्ष्मण सिंह वापस लापोड़िया लौटे, उनके पीछे धीरे-धीरे लापोड़िया का पुराना वैभव भी लौटने लगा।

धरती की पूजा : इस काम में उनके मित्र रामअवतार कुमावत भी साथ थे। ये दोनों युवक रोज गांव के फूट चुके बड़े तालाब को देखते, लेकिन इसे ठीक करने का उपाय उनकी समझ और क्षमता से बाहर लग रहा था, लेकिन फिर 1982 में एक दिन अचानक इन दोनों ने अपने कुदाल-फावड़े उठाए और लग गए बड़े तालाब को ठीक करने। कितने बरस लगते उसे ठीक करने में, यह उन्हें मालूम नहीं था। लोगों ने उन्हें रोका और समझाने की कोशिश की कि इस तरीके से कुछ नहीं होने वाला। लेकिन तभी गांव के प्रतिष्ठित पुजारी स्वामी सियारामजी धरती की इस पूजा में शामिल हुए फिर श्योकरण बैरवा भी साथ हो गए। चारों लोग दिन भर मिट्टी खोदकर, एक दो पीढ़ी से टूटे पड़े तालाब की पाल पर डालते। धीरे-धीरे पाल ऊपर उठने लगी। फिर कुछ दिन बाद इनकी मेहनत और धीरज देखकर लापोड़िया के 15-20 और लोग भी उनके साथ हो गए। एक से दो और दो से बीस लोगों के हाथ लगे तो पहली बार इन सबने अपना दिमाग भी लगाया। एक बैठक हुई और उसमें तय किया गया कि यह गांव का काम है, इसलिए पूरे गांव को इस काम के लिए बुलाना चाहिए।

गांव के घरों की जिम्मेदारी बांटी गई। सब मिलकर काम करें- ऐसी कड़ी जो टूट गई थी, अब फिर से जुड़ने लगी थी। गर्मी के दो महीनों में सबने मिलकर बड़े तालाब की टूटी पाल को सुधारा। लेकिन प्रकृति शायद अभी भी लापोड़िया की परीक्षा लेना चाहती थी।

पहली बरसात में ही तालाब फिर टूट गया। लेकिन लापोड़िया में वर्षों बाद उभर रहे संगठन ने धीरज नहीं खोया। लाउडस्पीकर के माध्यम से पूरे गांव को इकट्ठा किया गया और मिट्टी से भरी बोरियां डालकर टूटी हुई पाल को किसी तरह संभाल लिया गया। आने वाले

वर्ष में 'तरुण भारत संघ' ने इस बड़े तालाब को ठीक करने में मदद दी और फिर दस वर्ष की तपस्या के बाद लापोड़िया को बड़े तालाब का दोबारा वरदान मिला। तालाब में पानी रुकने से अनेक परिवारों को उनके नीचे के खेतों में, धीरे-धीरे सुधरती खेती के फलस्वरूप नाम मात्र के लाभ भी मिलने लगे। उस समय तक गांव के 100 बीघा (100 बीगोड़ी) क्षेत्र में सिंचाई के साधन उपलब्ध होने लगे थे।

छूटे हुए छोर पकड़ना : इसी बीच लक्ष्मण ने 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' से प्रकाशित आज भी खरे हैं तालाब पुस्तक पढ़ी। इसे उन्होंने अपने अन्य साथियों को भी पढ़ाया। सभी को लगा कि इसमें जिन परम्पराओं का वर्णन है, वे उनकी अपनी परम्पराएं रही हैं। इसलिए उन छूटे हुए छोरों को फिर से अपने गांव में मजबूती से अपनाना चाहिए।

बड़े तालाब को सुधारने के बाद, फिर गांव में उससे पहले बने, दो छोटे तालाबों को भी सुधारने का काम ग्रामवासियों द्वारा अपने हाथ में लिया गया। तीनों तालाबों ने यहां होने वाली वर्षा को अपने खजाने में भरना शुरू किया, इस तरह वर्षा-जल का उपयोग गांव के कुओं के माध्यम से साल भर तक कर सकने का रास्ता खुला।

इन तीनों तालाबों ने स्वयं में पानी समेट कर गांव में सुख बांटने का जो रास्ता खोला, उसके प्रति गांव ने आभार भी जताया। पुस्तक में वर्णित तालाबों के नामकरण की परम्परा को सबसे पहले जीवित किया गया। तीनों तालाबों के गुण और स्वभाव को देखते हुए एक सादे किन्तु गरिमामय समारोह में इनका नामकरण किया गया। पहले तालाब का नाम 'देवसागर', दूसरे का 'फूलसागर', और तीसरे का नाम 'अन्नसागर' रखा गया। पहले दो तालाबों से समाज के लिए पानी न लेने का नियम बनाया गया। फूल सागर के आसपास अच्छे पेड़-पौधे, जैसे सफेद आंकड़ा, बेलपत्र के पौधे और बगीची आदि लगाई गई। देवसागर की पाल पर छतरी, पनघट, पक्षियों के चुगने का स्थान और धर्मशाला आदि स्थापित की गई। तीसरे सबसे बड़े तालाब से गांव की जरूरत के मुताबिक सिंचाई की व्यवस्था फिर से खड़ी की गई और अपने लिए पानी निकालना तय किया गया।

गांव में खेती की परिस्थिति कुछ सुधर चली थी, लेकिन किसानी केवल खेती पर नहीं टिकती। पशुपालन उसका एक मजबूत आधार होता है। लापोड़िया का गोचर पूरी तरह से उजड़ चुका था। देखरेख के अभाव में गांव की यह सार्वजनिक भूमि अब किसी की नहीं रही थी। गोचर की घास के साथ-साथ वहां के पेड़ भी कट चुके थे।

गोचर की सुध : गांव की जो सार्वजनिक बुद्धि तालाबों को सुधारने में लगी थी, अब उसने गोचर को भी सुधारने का निश्चय किया। फिर छोटी-छोटी बैठकें शुरू हुईं, कुछ मोटे-मोटे निर्णय लिए गए। अब गोचर में कोई कुल्हाड़ी लेकर नहीं जाएगा घास नहीं खोदी जाएगी। वन्य जीवों का पूरा संरक्षण और गोचर में उनके लिए पानी की व्यवस्था और घोंसले तथा अण्डे देने के स्थानों को बचाने के भी निर्णय लिये गये। बड़े तालाब के बीच में बने लाखेटा को इन्हीं सब कारणों से सुरक्षित रखने का मन बनाया गया। गोचर के पुराने वैभव को याद किया गया किसी बुजुर्ग ने बताया कि एक समय में इस गोचर में इतने पेड़ थे कि इस कोने से उस कोने तक गांव के युवक इन पर चलने की प्रतियोगिता में भाग लेते थे।

घास और उपयोगी पेड़ों से ढके ऐसे गोचर की बात, तब फिर से एक नया सपना बनकर सामने आई, लेकिन इसे पूरा करना तालाब के काम से कहीं ज्यादा कठिन था। गोचर को सुधारने का संकल्प तो था, उसका अनुभव किसी के पास नहीं था।

किसानी के अनुभव ने इतना तो बता ही दिया था कि गोचर में जल संग्रहण जरूरी नहीं है, यह तालाब में होता है। यहां तो वर्षा के दौरान तुरंत बह जाने वाले पानी को थोड़ी देर के लिए रोकना है। पूरा पानी रोक लें तो घास अच्छी नहीं होती। प्रकृति को सिर्फ इतनी नमी चाहिए कि वह गोचर भूमि में घास की कोमल जड़ें जमा सके। एक बार घास जम जाए तो उसे बाद की वर्षा में फिर इतना पानी, इतनी नमी चाहिए कि वह सूरज के प्रकाश के साथ इस नमी को जोड़कर घास को और ऊपर उठा सके।

चौका लगा हाथ : गोचर में क्या होना चाहिए और क्या नहीं इनका पूरा ध्यान रखकर लक्ष्मण सिंह ने पहली बार चौका शब्द खोज निकाला। लेकिन जब इस चौका पद्धति को

गोचर में उतारा तो चौके की चार भुजाओं में से एक भुजा हटा दी गई। अब यह चौका एक बड़ी भुजा और दो छोटी भुजाओं का रूप ले बैठा। लेकिन इसमें जब वर्षा का पानी भरेगा तो यह एक लंबे आयत यानी चतुर्भुज का रूप ले लेगा, इसलिए इसका नाम चौका ही रहा।

घास से पहले राजनीति पनपी : आज हमारे गांव जिस तरह से टूट चुके हैं, उन्हें चौका के माध्यम से जोड़ने का काम चुटकी भर में हो जाता है, ऐसा मान लेना बहुत भोलापन होगा। इस काम को शुरू करते ही घास पनपने से पहले गांव में गन्दी और स्वार्थी राजनीति पनप उठी। पूरे गांव की एकता को तोड़ते हुए कुछ लोग उठ खड़े हुए। उन्होंने चौके का विरोध किया। अफवाह फैला दी कि संस्था के लोग गोचर पर कब्जा करना चाहते हैं। बचे-खुचे पेड़ों को न काटने का जो संकल्प गांव ने लिया था, उसी पर इन लोगों ने कुल्हाड़ी मार दी। लेकिन सत्य गांव के साथ था, संस्था के साथ था, इसलिए इस बेहद अप्रिय प्रसंग में लोगों ने सत्य का आग्रह भी जता दिया। गोचर में सत्याग्रह शुरू हुआ। ठंड के दिन थे। दिनभर स्त्री-पुरुष पूरे गोचर में घूम-घूम कर उसकी रखवाली करने लगे, लेकिन दिन की रखवाली पर्याप्त नहीं हुई। तब गोचर बचाने वाले लोग ठंड की रात में अपने घरों को छोड़कर रजाई और कंबल लेकर गोचर में सोने लगे। भविष्य में पूरा गांव चैन की नींद सो सके, इसके लिए 1995 की ठंड में गोचर के ये रखवाले खुले आकाश के नीचे बैठे रहे और बारी-बारी से पहरा देते रहे। बड़ी उम्र के लोगों के साथ युवा, महिलाएं और परिवार के बच्चों ने भी अपने बड़े बुजुर्गों का साथ दिया, फिर पुलिस आयी, कलेक्टर आए, छोटे-बड़े अधिकारी, पटवारी आए। सबने दोनों पक्षों के साथ बैठकर सारी स्थिति समझी। गोचर में पेड़ काटने का ठेका निरस्त किया गया। उसके बदले तय हुआ कि गोचर के लिए नुकसानदेह पेड़ 'विलायती बबूल' ही काटा जाएगा। और इस तरह गोचर बच गया।

बैठक में निर्णय लिया गया कि गोचर पर किये गये नाजायज कब्जे भी हटाये जायेंगे। पटवारी जरीब लेकर इस काम में आगे आए। गांव के नक्शे के आधार पर बगैर किसी भेदभाव के पूरी नपाई हुई। लक्ष्मण ने पूरे प्रेम किन्तु पूरी दृढ़ता के साथ बता दिया था कि चूंकि इस गोचर से पूरे गांव की खुशहाली जुड़ी है, इसलिए इस काम में किसी का भी पक्ष नहीं लिया जा सकता।

बरसों का बेजा कब्जा हटाये जाने से पैदा कड़वाहट दूर करने के लिए गोचर में ही पूरे गांव का सामूहिक भोज रखा गया। गांव के 200 घरों से लगभग 400 लोगों ने भोजन किया। सहभोज में परोसे गए मीठे सीरे ने सारी कड़वाहट मिटा दी।

सामूहिक भोज के बाद विलायती बबूल को पूरे गोचर से हटाने का सुंदर देसी अभियान प्रारंभ हुआ। गांव के लोगों ने पूरे गोचर में घुसकर 'विलायती बबूल' की गिनती की। फिर उस गिनती को गांव के कुल परिवारों में बांटा। तकरीबन छह सौ पेड़-पौधे विलायती बबूल के थे और गांव में 200 परिवार थे। तय किया गया कि प्रति परिवार तीन विलायती बबूल के पेड़-पौधे जड़ समेत उखाड़ने हैं। इसका जरा-सा हिस्सा भी छूट जाए तो इसे फिर से बढ़ने में देर नहीं लगती। इसलिए बगैर ज्यादा देर किए अगले छह महीने में गोचर से इसे हटाना तय हुआ। जड़ समेत खोदने के बाद जो गड्ढे निकले, उनमें इन्हीं परिवारों ने देसी बबूल, बेर और तरह-तरह की उपयोगी घास के बीजों का रोपण कर दिया।

शुरू के दिनों में चौका बनाने के बाद उत्सव में बाहर से पेड़-पौधे और तरह-तरह की घास के बीज भी लाकर लगाए। लेकिन

इनके परिणाम बहुत अच्छे नहीं निकले। गोचर में जितना जरूरी था उतना पानी रोका गया था। बाकी अतिरिक्त पानी चौकों को बिना जोड़े आगे बहता रहा था, इसलिए भले ही बाहर से लाकर बोए गए बीज अंकुरित नहीं हुए, लेकिन बिना बोये बीजों ने तर हुई गोचर की भूमि में अपना सिर उठाकर इसे हरा-भरा करना शुरू कर दिया था। वर्षा के दिनों में पूरे गोचर में जैसे-जैसे पानी चलता, उसके सूखते ही नमी वाली उस जगह पर प्रकृति तरह-तरह की घास से हरे रंग की जाजम बिछा देती। पिछली कुछ पीढ़ियों ने घास के जो प्रकार खो दिए थे, एक-एक कर लापोड़िया के गोचर में लौटने लगे।

संकल्प का विस्तार : गोचर को सुधारने के अपने इस संकल्प को लापोड़िया ने कर्म में बदला और फिर उसका विस्तार भी किया। आसपास के सभी गांवों में युवा मंडल बनाए गए। सभी से संपर्क किया गया और गोचर, तालाब, पेड़-पौधे और वन्य जीवों को बचाने के लिए बैठकें की गईं, पदयात्राएं निकाली गईं। आस-पडो़स के गांव से शुरू हुआ यह काम बाद में और आगे चलकर 84 गांवों में फैल गया। अब देवउठनी ग्यारस से तालाब और गोचर पूजन का काम प्रारंभ होने के बाद फिर जगह-जगह ऐसी पदयात्राएं, जन-जागरण के लिए निकल पड़ती हैं। गोचर आंदोलन में हर जगह इस बात का ध्यान रखा गया है कि कोई छूट न जाए। आज यदि कोई स्वार्थवश इस काम में शामिल नहीं हो रहा है तो पूरा धीरज रखा गया है। उसे समझाया गया है कि उसका भी हित सार्वजनिक हित से ही जुड़ा हुआ है। आज 6 साल के अकाल के बाद भी लापोड़िया में चारा की कमी नहीं है। यहां अकाल के बीच में भी दूध की बड़ी न सही, लेकिन एक छोटी नदी तो बह ही रही है। आज लापोड़िया में प्रतिदिन 40 केन यानी कोई 1600 लीटर दूध उत्पन्न किया जा रहा है। घर-परिवार और बच्चों की जरूरत पूरी करने के बाद ही दूध की बिक्री की जाती है। जयपुर डेयरी यहां से हर महीने ढाई लाख रुपए का दूध खरीदती है।

इस तरह आज लापोड़िया हर वर्ष लगभग 30 लाख रुपए का दूध पैदा कर रहा है और यह दूध गांव में लौटी हरियाली से पैदा हो रहा है।

गोचर और अकाल निवारण : लेकिन गोचर विकास का यह काम बताता है कि तालाबों में तो पानी रोकना ही चाहिए, साथ-साथ इसी उद्देश्य को और आगे बढ़ाने के लिए गोचर की तरफ भी ध्यान देना चाहिए। यह काम दो तरह से गांव को अकाल से लड़ने के लिए मजबूत बनाता है। गांव में गोचर का क्षेत्रफल प्रायः तालाब के भराव से कई गुना ज्यादा होता है। यहां वर्षा के एक मौसम में 9-9 इंच पानी एक बड़े भू-भाग में तेजी से बहकर बर्बाद हो जाने के बदले चौका पद्धति से एक कोने से दूसरे कोने तक धीरे-धीरे भूमि में समाता जाता है। इस तरह यह भू-जल को उठाता है, सूखी धरती का पेट भरता है, उसकी प्यास बुझती है और फिर अच्छी नमी के कारण गोचर में घास की जाजम बिछाता है। इससे गांव के पास अकाल से लड़ने के लिए पानी भी रहता है और पशुओं के लिए पर्याप्त घास भी।

लापोड़िया गांव में किसी भी सड़क, गली या चौराहे का नाम किसी जन-नायक के नाम पर नहीं मिलेगा। गांव में कहीं भी गांधीजी की मूर्ति नहीं है। लेकिन आज पूरा गांव गांधीजी के आदर्शों का मूर्तरूप बनने का प्रयत्न कर रहा है। गांव के पुराने झगड़े आपसी बातचीत से समाप्त हो चुके हैं। पुलिस और कचहरी के चक्कर लगाने की जगह अब लापोड़िया के लोग सालभर आने वाले त्योहारों में मिलकर नाचते-गाते हैं, गुलाल उड़ाते हैं। शहनाई और ढोल नगाड़ों की आवाज यहां सुनाई देती है। आनंद की इस वर्षा के बीच आप किसी भी दिन पाएंगे कि गांव के बुजुर्ग और युवक-युवतियां आसपास के दूसरे गांवों में निकल गए हैं, ताकि वहां भी प्रगति हो सके और लापोड़िया की तरह तालाब, गोचर का प्रसाद आनंद से बंट सके। लापोड़िया में अच्छे विचारों से अच्छे कामों का श्रीगणेश हो चुका है।

लापोड़िया के इस सफल प्रयोग से प्रेरणा लेकर देश के उन हिस्सों में जहां कम वर्षा के कारण या कतिपय अव्यवस्था की वजह से अकाल जैसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, से निपटने के लिए सरकार और कुछ संस्थाओं ने इसी तरह के उपाय किये हैं जिनके फलस्वरूप उन गांवों में भी खुशहाली की स्थिति धीरे-धीरे आ रही है।

सिंचाई के समय जल के अपव्यय को रोकना

पौधों के जीवन के लिये उनके पुष्पित-पल्लवित होने के लिये जल अति महत्वपूर्ण है। चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारी अर्थव्यवस्था का बड़ा भाग कृषि पर निर्भर है। विशेषकर मध्यप्रदेश में खेती को लाभ का व्यवसाय बनाने के लिये लगातार प्रयास किये जा रहे हैं। सिंचाई के भी साधन-संसाधन बढ़े हैं। सुचारु सिंचाई से पौधों की उपज बढ़ने के साथ-साथ फसल चक्र प्रभावित नहीं होता। वर्तमान में पानी की कमी को देखते हुए सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इससे जल का अपव्यय न हो। सिंचाई में उतना ही जल उपयोग में लाया जाये जितना आवश्यक है। यदि इन बारीकियों पर सिंचाई पूर्व ही गंभीरता से विचार कर लिया तो हम जल की एक-एक बूंद का सही उपयोग कर अपने कृषि क्षेत्र में बढ़ोतरी कर सकते हैं। यहां हम सिंचाई के दौरान होने वाली जल की हानि के कारण व उससे बचाव के उपायों का उल्लेख कर रहे हैं।

सिंचाई के दौरान जल की हानि के मुख्य कारण

जल अपवाह अथवा अपधावन - जल का खेत से निकलर बहना अपधावन कहलाता है। तेज वर्षा या अधिक सिंचाई की स्थिति में यदि खेत की मेढ़ कमजोर हो तो जल की हानि होती है। नहरों या सिंचाई की नालियों के किनारे मेड़ कमजोर होने पर भी पानी नष्ट हो सकता है।

रिसाव - नहरें जब ऐसे क्षेत्र से होकर बहती हैं, जहाँ बलुई अथवा बलुई दोमट मिट्टी होती है, रिसाव द्वारा बहुत-सा पानी नहरों की बगल से निकलकर समीपवर्ती खेतों में भर जाता है और वर्ष के अधिकांश महीनों में खेतों को नम बनाये रखता है। इसी प्रकार सिंचाई की नालियों का भी बहुत सा पानी रिसाव द्वारा नष्ट होता है।

जल सतह या मृदा सतह से वाष्पीकरण - अधिक ताप या तेज वायु की गति के कारण जल सतह या भूमि की सतह से जल वाष्प के रूप में उड़कर नष्ट होता रहता है। गर्मियों के मौसम में शुष्क व तेज हवाओं तथा अधिक ताप के कारण, जल की हानि, सर्दियों की अपेक्षा अधिक होती है। वर्षा ऋतु में, वायु में नमी की मात्रा बढ़ने के कारण, कम नमी नष्ट होती है।

पौधों द्वारा उत्स्वेदन - खरपतवार व फसल के पौधे, लगातार जल वाष्प के रूप में, मिट्टी के जल को नष्ट करते रहते हैं।

सिंचाई के समय जल को नष्ट होने से बचाने के उपाय

जल की हानि को रोकना -

- खेत की मेढ़ मजबूत बनाई जाये।
- खेत समतल कर लिये जायें।
- ढालू खेतों में कन्टूर पर सिंचाई की जाये।
- सिंचाई की नालियों के किनारे व तली पक्की व सीमेन्ट की बनाई जाये तथा समय-समय पर मरम्मत की जाये।
- नहरों की पटरियाँ मजबूत बनाई जायें व आवश्यकतानुसार चिकनी मिट्टी की या पक्की बनाई जाये।
- नहरों के किनारे वृक्ष लगाये जायें।
- नहरों व सिंचाई की नालियों में उचित ढाल दिया जायें।
- खेतों में जल का अन्तःस्त्रवण बढ़ाने के लिये, जुताई या खड़ी फसल में निंदाई-गुड़ाई की जाये।
- खेतों में कटाव अवरोधी फसलें, जैसे लोबिया आदि उगायें।
- अधिक ढालू खेतों में वेदिकाएं बनाई जाएं व चरागाह में बहुवर्षीय घासें उगाई जायें।

रिसाव व अन्तःस्त्रवण में जल की हानि को रोकना -

- जुताई की संख्या कम करें व जिन भूमियों में रिसाव की गति तेज है वहाँ पर एक सतह गहराई पर जुताई करें।
- जैविक खाद (खली या गोबर की खाद व कम्पोस्ट) का प्रयोग बढ़ायें।
- सिंचाई हल्की लगाई जाये।
- फसल काटने के बाद अगर सम्भव हो तो, फसलों की जड़ें, तने, पत्तियाँ आदि खेत में ही जोत दी जायें।
- नालियों व नहरों की तलहटी व किनारे सदैव सीमेंट व कंकरीट की सहायता से बनाये जायें व समय-समय पर मरम्मत की जाये।
- सिंचाई की अधोसतह सिंचाई व बौछारी सिंचाई या टपकाव सिंचाई विधियाँ अपनाई जायें।

- सिंचाई की नालियाँ व नहरों में अच्छा ढाल दिया जाये।

वाष्पीकरण द्वारा होने वाली जल की हानि को रोकना-

- आच्छादित फसलें उगाई जायें।
- खाली खेतों की जुताई कर पाटा लगाया जाये।
- फसलों की निंदाई-गुड़ाई की जाये।
- नालियों की सतह को ढका जाए या प्लास्टिक के पाइप, नालियों के स्थान पर प्रयोग करें।
- खेतों में पलवार का प्रयोग किया जाए।
- नहरों व सिंचाई की नालियों में जल की गति को तेज करने के लिये पर्याप्त ढाल दिया जायें।
- नहरों के किनारे पेड़ लगाये जायें ताकि तेज धूप से वाष्पीकरण रोका जा सके।
- नहरों व सिंचाई की नालियों की चौड़ाई कम रखी जाये व गहराई परिस्थितियों के अनुसार बढ़ाई जाये।

खरपतवारों द्वारा उत्स्वेदन की हानि को कम करना -

- निराई-गुड़ाई करके खेतों से खरपतवार नष्ट किये जायें।
- सिंचाई की नालियों व नहरों के किनारे के खरपतवार समय-समय पर नष्ट किये जायें।
- परिस्थितियों के अनुसार, उपयुक्त शाकनाशी से कभी-कभी सिंचाई की नालियों व नहरों के किनारे के खरपतवार नष्ट किये जायें।
- फसल के पौधों की उत्स्वेदन दर घटाने के लिये प्रति पारदर्शी रसायन केओलीनाइट या कैल्शियम कार्बोनेट या जलीय चूने के घोल का छिड़काव किया जाये। केओलिनाइट सस्ता एवं अधिक उपयुक्त है। केओलिनाइट का घोल सफेद होने के कारण प्रकाश परावर्तन बढ़ा देता है जिसके कारण पत्तियों द्वारा अवशोषण के लिये उपलब्ध विकिरण ऊर्जा की मात्रा घट जाती है। इस प्रकार पत्तियों का तापमान घट जाता है तथा उत्स्वेदन दर कम हो जाती है।

केओलिन की पानी में 5-6 प्रतिशत घोल की 1,000 लीटर मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग की जाती है। पत्तियों पर घोल की स्थिरता बढ़ाने के लिये टी पौल की कुछ बून्दें घोल में डाल देते हैं। पौधों पर जब पत्तियाँ अधिक मात्रा में हों तब कम अवधि वाली फसलों में बुवाई 25-30 दिन के बाद व मध्यम अवधि वाली फसलों में 40-60 दिन बाद केओलीन के घोल का छिड़काव करना चाहिए। उल्लेखनीय है कि भारतीय कृषि अनुसंधान नई दिल्ली में विभिन्न फसलों मूंग, गेहूँ व सरसों आदि में केओलिन का प्रयोग करके 12.30 प्रतिशत तक फसल की उपज में वृद्धि प्राप्त की गई।

● **अभिलेष स्वामी**

पानी बचाने

बौछारी सिंचाई के लाभ

निम्न एक या एक से अधिक परिस्थितियों में बौछारी प्रणाली अपनाकर ज्यादा क्षेत्र में कम खर्च द्वारा समान रूप से सिंचाई की जा सकती है।

1. बौछारी प्रणाली से भूमि को बिना समतल किये अच्छी तरह सिंचाई की जा सकती है। इसलिए ऊँची-नीची व अधिक ढलान वाली भूमियों के लिये यह प्रणाली बहुत उपयुक्त है। इनको समतल करने का व्यय लगभग 8,000 रुपये प्रति हैक्टेयर से ज्यादा है, जिसकी बचत हो जाती है।
2. अगर खेत का कुल क्षेत्रफल 2.5 हैक्टेयर से कम है तो स्प्रिंकलर प्रणाली अपनाने में प्रति हैक्टेयर ज्यादा खर्च आयेगा।
3. उन क्षेत्रों में जो पानी ज्यादा लवणीय खारा है, इस प्रणाली द्वारा पानी को दिन के अधिक तापमान के समय फसल पर लगाने से फसल की पत्तियों के जल जाने की सम्भावना बनी रहती है।
4. उन किसानों के खेतों में, जिनको नहरी पानी वाराबन्दी औसरेबन्दी से मिलता है, बौछारी विधि को तभी अपनाया जा सकता है, जब पानी को तालाब टैंकों में इकट्ठा किया जाए या फिर नहर से पानी का वितरण इस प्रकार हो कि पानी नियमित रूप से आवश्यकतानुसार उपलब्ध हो सके।
5. जहाँ विजली उपलब्ध नहीं है वहाँ डीजल इंजन के प्रयोग से स्प्रिंकलर सैट को चलाने में ज्यादा खर्चा आएगा। जहा बिजली उपलब्ध है वहाँ बौछारी विधि से अधिकतम लाभ लेने के लिए बिजली कम से कम 12 से 14 घण्टे प्रतिदिन मिलनी चाहिए।

- जो जहाँ है वहीं पानी को बचाने का काम करें।
- पुरखों ने जो कुएँ, तालाब और बावड़ियाँ हमें रचकर दी हैं, सबके सहयोग से और सबसे पहले उनके पानी के स्रोत खोलें और उसे साफ रखने की आवाज बुलन्द करें।
- जो पुराने सरोवर कचरे से पुरकर उथले हो गये हैं उन्हें लोगों के सहकार से गहरा करने का बीड़ा उठायें।
- धरती की गहराई से जो पानी खींचकर बाहर उलीचा जा रहा है, इस लालच पर नियंत्रण करने का माहौल पैदा करें।
- गाँवों, कस्बों और शहरों में बरसात के पानी को रोकने के लिए पारंपरिक और श्रेष्ठ आधुनिक विधियों को अपनाने का अभियान छेड़ें।

कैसे बचे घर में पानी

- पीने के पानी के छोटे गिलासों का इस्तेमाल प्रारंभ कर दें जिससे कि बड़े गिलासों में जूठा बचा पानी बेकार न जाए।
- कपड़े, बर्तन, फर्श की धुलाई पर खर्च हो रहे पानी का अनावश्यक इस्तेमाल न करें।
- फर्श की धुलाई के लिए कपड़े खँगालने के बाद बचे हुए पानी का उपयोग करें।
- बगीचों-गमलों में सूर्योदय से पहले और शाम ढलने पर जरूरत के अनुसार ही पानी डालें।
- कपड़े निचोड़ने और धोवन से बचा पानी कूलरों में उपयोग करें। तेज गर्मी में ही कूलर चलाएँ।
- नल टपकता दिखे तो बंद कर दें।
- ओवरहैड टैंक से रिसते पानी और ओवर-फ्लो को तत्काल रोकें।
- बच्चों को स्वयं नहलाएँ-धुलाएँ जिससे कि वे व्यर्थ पानी न बहा पाएँ।
- पाखाने में फ्लश का इस्तेमाल न करें। अन्य कार्यों से बचा पानी एकत्रित कर उसमें डालें।

की पहल

- बाथरूम में यदि नहाने का टब हो तो उसे जरूर हटवा दें।
- स्कूटर-कार को पानी से धोने के स्थान पर गीले कपड़े से पोछें।

ऐसे बचे बाहर पानी

- अपने और आसपास के घरों की छतों से वर्षा काल में बहते पानी को एक पाइप के सहारे फिल्टर लगाकर 'परकोलेशन टैंक' में उतारने के लिए प्रेरित करें।
- आसपास के किसी हैंडपंप को चलाते समय, बरतन भरते समय बेकार बहने वाले पानी को 'परकोलेशन पिट' द्वारा जमीन में उतारने का प्रयास करें।
- नगर-ग्राम के कुओं-बावड़ियों की साफ-सफाई नगर पालिका या नगर निगम नहीं करा पाती हो तो मिलजुल कर इस काम को कराएँ।
- जिन कुओं-बावड़ियों में पानी आता ही नहीं उनमें 'रिचार्ज ट्यूब वेल' खुदवाने के लिए प्रेरणा दें।
- तालाबों को गहरा करने, सफाई कराने और खाली पड़ी पत्थर की खदानों में वर्षा का जल रुकवाने का प्रयास करें।
- नालों पर मिट्टी-पत्थर के बाँध बनवाने के लिए प्रेरणा देकर एकत्रित पानी को भूमि में रिसने में मदद करें।
- अपने शहर या गाँव से निकले हुए नाले पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बोल्डर डालकर पानी की रफ्तार को यथासंभव कम करने का प्रयास करें।
- खेतों के ढलान वाले कोने में पोखर बनवाकर वर्षा का पानी एकत्रित करें।
- सभी खुले क्षेत्रों में छायादार वृक्ष रोपने का प्रयास करें।

● **रुचि शर्मा**

टपक सिंचाई के लाभ

1. सिंचाई की जल उपयोग क्षमता अधिक है। सभी पृष्ठीय सतह सिंचाई विधियों में पानी की पर्याप्त मात्रा निस्पंदन, अन्तःस्त्रवण तथा वाष्पीकरण आदि क्रियाओं द्वारा नष्ट हो जाती है। बौछारी विधि में भी लगभग 20 प्रतिशत पानी की हानि हो जाती है, परन्तु ड्रिप विधि में पानी की सभी हानियाँ बहुत कम या बिल्कुल नहीं होती हैं।
2. वायु की तीव्र गति के समय बौछारी विधि में समान सिंचाई करने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है, परन्तु ड्रिप विधि में कोई कठिनाई नहीं होती है।
3. सिंचाई की अन्य विधियों की अपेक्षा ड्रिप सिंचाई में 50 प्रतिशत पानी की बचत हो जाती है। अतः लगभग दोगुने क्षेत्रफल में खेती करना सम्भव हो जाता है। इसी कारण से हम इसको वाटर माइजर विधि भी कह सकते हैं।
4. ड्रिप सिंचाई से सभी पौधों को पानी समान रूप से मिलता है।
5. इस विधि में खेतों को समतल करने की आवश्यकता नहीं है, जबकि अन्य सतह सिंचाई विधियों में यह कार्य आवश्यक होता है। खेतों को समतल करने में अधिक व्यय करना पड़ता है। अतः ड्रिप विधि एक खर्चीली विधि है।
6. इस विधि में नालियाँ, मेढ़ तथा बरहे बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप उपज प्रति हैक्टेयर में वृद्धि होती है।
7. सिंचाई करने में श्रम कम लगता है।
8. सिंचाई अनुसंधानों के अनुसार, शुष्क क्षेत्रों में ड्रिप सिंचाई अधिक उपयोगी है।

जल संरक्षण :

जल हमारी प्रकृति की अनमोल धरोहर है। सृष्टि की रचना से लेकर सृष्टि के संचालन तक जल की महत्ता सबसे ऊपर है। जल के बिना न सृष्टि की संरचना संभव है और न ही प्राणियों का अस्तित्व। जल ही वह कड़ी है जिससे सम्पूर्ण संसार का सुरुचिपूर्ण निर्वहन संभव हो पा रहा है। जीवन के मूल में जल है। जल से ही जीवन का उद्भव हुआ है। समूची सृष्टि में पर्यावरण में जीवन का आधार जल ही है। प्रत्येक प्राणी के स्थूल शरीर में 75 प्रतिशत भाग जल का ही है। यह जल धरती पर पाये जाने वाले पदार्थों में सबसे साधारण है, लेकिन गुणों में असाधारण और सर्वश्रेष्ठ। हम सभी जल की आवश्यकता और जल के महत्व को जानते हैं और मायने भी समझते हैं लेकिन जल के मूल्यों को लेकर अभी भी अनभिज्ञ हैं।

यहां जल के मूल्य से मतलब जल के संबंध में हमारी सोच से है। आज भले ही जल की उपलब्धता में कमी नहीं है लेकिन भविष्य की तस्वीर को देखते हुए हमारा निश्चिंत होना हमारी नाकामी जाहिर करती है। आज विश्व भर में जल संरक्षण को लेकर बड़ी-बड़ी बहसें और चिंता की लकीरें खींची जा रही हैं। कुछ कदम भी उठाए जा रहे हैं। पर क्या यह कदम काफी हैं? आंकड़ों और रिसर्च रिपोर्टों में हम जल की उपलब्धता और आवश्यकता पर खूब पढ़ते और समझते आ रहे हैं। इस पर कौन से कदम उठे हम उन पर नहीं जाना चाहते। हमारा एक पक्ष और मजबूत करने की आवश्यकता है जल संरक्षण को लेकर वह है हमारा व्यावहारिक पक्ष। यही वह पक्ष है जिससे हम और हमारा समाज ग्रास लेबल से जल संरक्षण की पहल और प्रयास कर सकता है।

वर्तमान में व्यावहारिक पक्ष में ही अधिक जोर देने की आवश्यकता है। यह पक्ष देश के हरेक नागरिक से जुड़ा है। छोटे-छोटे स्तर से ही जल संरक्षण करके हम अपने प्रभावी कर्तव्यों का पालन कर सकते हैं। यह हर एक घर से, हर गाँव से, हर वर्ग से जुड़ा है। जिस पर अमल होते ही जल की समस्या से काफी हद तक काबू पा सकते हैं। चूंकि जल संरक्षण का कार्य एकाकी के साथ-साथ सामुदायिक भी है। सहभागिता, सामूहिकता से किए जाने वाले कार्य ही हमारे व्यावहारिक पक्ष की प्रबल और प्रभावी कड़ी है। इस पर ही विशेष ध्यान देने की जरूरत है। हम देखते हैं कि गाँवों में बड़ी से बड़ी समस्या का हल गांव के लोग कितनी चतुराई से किए जाने वाले कार्यों में लोगों की सहभागिता अहम होती है। यदि यही सहभागिता जल संरक्षण को लेकर की जाए तो गांव की समस्या गांव वालों के हाथों ही हल हो सकती है। हालांकि ऐसी पहल प्रारंभ भी हो चुकी है। लोगों की मानसिकता में बदलाव आ रहे हैं लेकिन अभी भी बहुत काम करने की आवश्यकता है। समाज के हर वर्ग को शामिल करने की आवश्यकता है। सरकार के साथ मिलकर स्वैच्छिक संगठन और समाज का हर वर्ग जनहित से जुड़े इस मुद्दे पर जुट जाए तो जल संरक्षण की दिशा में आमूल चूल परिवर्तन होगा। जल संरक्षण और जल संवर्धन के केन्द्र बिन्दु में, आवश्यक तत्वों में हम सबको जुड़ना होगा। एक लक्ष्य को लेकर कार्य करना होगा तब ही उद्देश्य को पूर्ण कर पाएंगे। गांवों की समस्या को गांव के लोग ही हल करें। लोग एक मंच पर आकर, चौपाल लगाकार समस्या का हल ढूंढ़ें और जो सीमित

महत्व, मायने और मूल्य

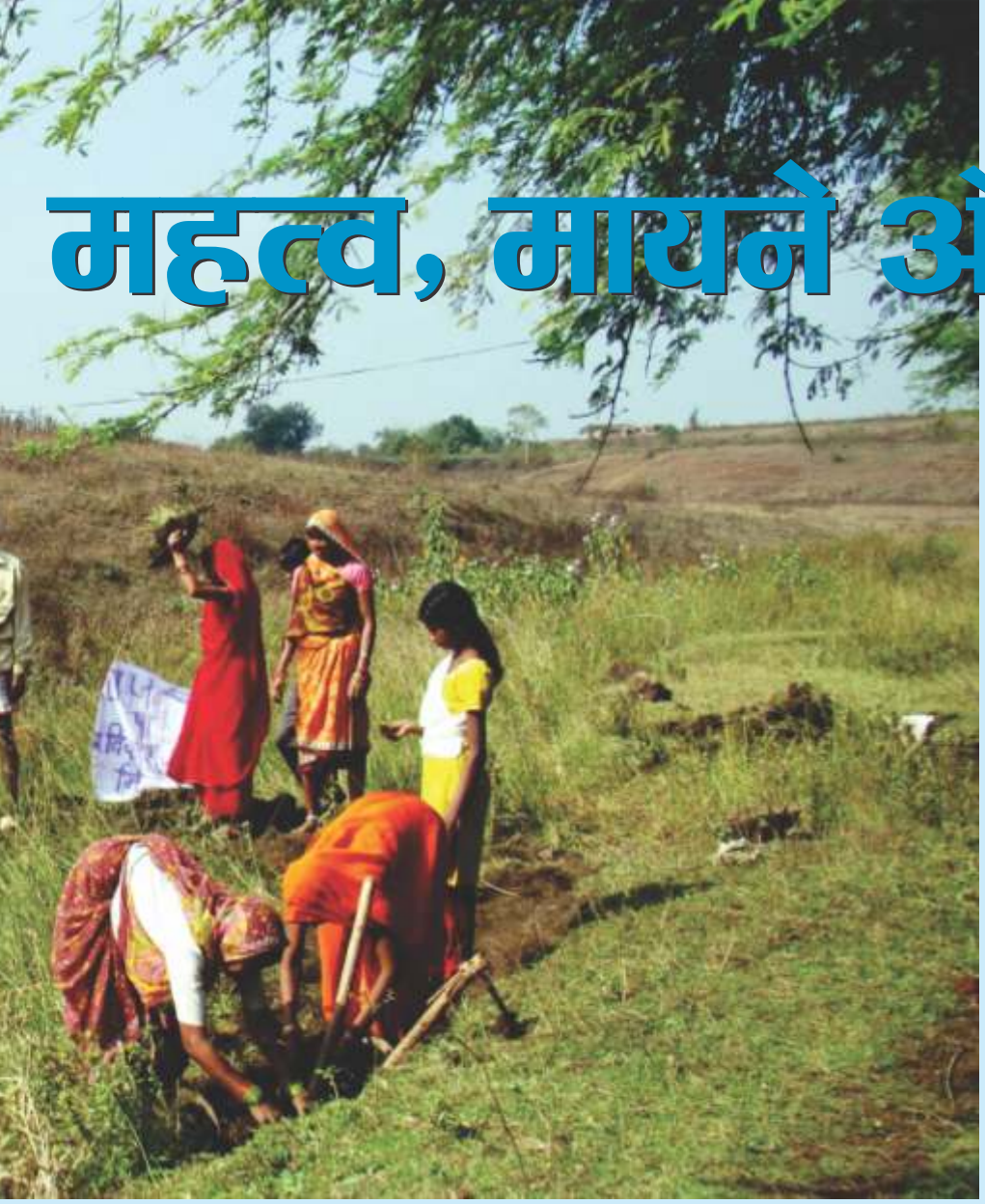

संसाधन है उनके भरोसे स्वयं हल निकालें। यही हमारी जल संरक्षण की दशा में व्यावहारिक पहल होगी जो आज की आवश्यकता है। बड़े मंचों की बात छोड़, छोटे स्तर पर भी जल की समस्या का हल ढूंढ़ना होगा। आओ साथ मिलकर, साथ चलकर जल को संरक्षित करें। इसके साथ ही निम्न स्तर कई कदम हैं जिन्हें आगे बढ़ाकर हम अपने स्तर पर जल संरक्षण की दिशा में चल सकते हैं। ये सार्थक भी हैं और उपयोगी भी।

जल संरक्षण की प्रभावी पहल

बोरी बंधान - जल संरक्षण का सबसे प्रभावी और प्रबल पक्ष है बोरी बंधान। बोरी बंधान का सम्पूर्ण कार्य जनभागीदारी पर ही निर्भर होता है। जितनी अधिक जनभागीदारी, उतनी अधिक कार्य की सार्थकता। जल के अधिकतम स्त्रोतों में बोरी बंधान बनाए जाएं तो जल की समस्या से निजात पाया जा सकता है। बोरी बंधान जल संरक्षण की वह दिशा है जिसमें न धन की आवश्यकता होती है और न ही शासकीय अन्य अड़चनें आती हैं। इस कार्य में सबसे महत्वपूर्ण है श्रमदान। श्रमदान के माध्यम से ही हम अपनी जरूरतों को पूर्ण कर सकते हैं। एक छोटा-सा प्रयास ही बड़ी समस्या का हल होता है।

पानी की समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए हमें बोरी बंधान का निर्माण करना चाहिए। कम मेहनत और न के बराबर लागत में इसके सफल परिणाम हमारे सामने होंगे। बोरी बंधान बनाने के लिए हमें सबसे पहले नदी के उस स्थान का चयन करना चाहिए जहां कम बोरी बंधान से अधिक से अधिक पानी एकत्रित किया जा सकता है। उसके बाद गाँव के प्रत्येक घर से खाली बोरियों को इकट्ठा किया जाए। फिर एक निश्चित दिन गांव के अधिक से अधिक लोग एकत्रित होकर खाली बोरियों में रेत, मिट्टी, गिट्टी भरकर नदी के उस स्थान पर रखें जहां से पानी की निकासी हो रही हो। बोरियों को रखने से नदी नाले का जो पानी व्यर्थ बह रहा था वह एकत्रित होना प्रारंभ हो जाएगा। देखते ही देखते एक बड़े क्षेत्र में पानी का भराव हो जाएगा और लोगों को अपनी आवश्यकतानुसार जल मिलने लगेगा। यह कार्य गर्मियों के दिनों में ज्यादा उपयुक्त माना जाता है क्योंकि इन दिनों में नदी नाले सूख जाते हैं या सूखने की कगार पर होते हैं। यही रुका हुआ पानी आगामी दिनों तक लोगों को, पशुओं को मिलता रहता है। सामूहिक जन भागीदारी से किए जाने वाले कार्य में ज्यादा श्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए ऐसे सामूहिक कार्यों की महती आवश्यकता है। हमें ऐसे कार्यों को प्राथमिकता से करना चाहिए। हालांकि स्वैच्छिक संगठनों की पहल से आज लाखों की संख्या में बोरी बंधान बनाए जाते हैं। जिनके परिणाम भी सिद्ध हो रहे हैं।

चैकडेम और नाला बंधान - जल संरक्षण की दिशा में चैकडेम और नाला बंधान भी कदम है। नदी नालों पर चैकडेम बनाकर पानी को रोका जा रहा है। इससे न केवल लोगों को अपनी जरूरत का पर्याप्त पानी मिल

रहा है बल्कि कृषि कार्यों के लिए भी पानी उपलब्ध हो रहा है। चैकडेम बनाने की प्रक्रिया भी बोरी बंधान जैसी ही है। नदी नालों की मोटी दीवार बनाई जाती है जिससे कि पानी की निकासी न हो सके। यह वृहद स्तर का भी होता है। यह कार्य अस्थायी होता है। खासकर गर्मियों के मौसम में इस तरह के प्रयोग अधिक होते हैं। वहीं नाला बंधान भी जल संरक्षण का प्रमुख उपाय है। चैकडेम बनाते समय हमें यह भी ध्यान रखना होता है कि पानी का अधिक ठहराव होने पर वह कहीं से टूटे फूटे नहीं। इसलिए इसकी मजबूती पर विशेष ध्यान दिया जाता है। चैकडेम से रुके पानी से आज अनेक क्षेत्रों में सिंचाई की जाती है। यह पानी रोकने का सबसे कारगर उपाय माना जाता है। इसके निर्माण में भी धन की आवश्यकता नहीं होती। इसे सामूहिक श्रमदान से आसानी से बनाया जा सकता है। चैकडेम के निर्माण में किसी बड़ी मशीनरी की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। जल संरक्षण के क्षेत्र में इसकी सार्थकता अहम है। इससे आसपास के क्षेत्र का जल स्तर भी बढ़ता है।

नदी तथा तालाब गहरीकरण - हाल ही के कुछ वर्षों से प्रदेश भर में नदी, तालाब गहरीकरण का कार्य प्रमुखता से किया जा रहा है। गर्मियों के मौसम में एक लक्ष्य को लेकर हर एक नदी में जनभागीदारी से गहरीकरण का कार्य किया जाता है। इस कार्य में सभी की सामूहिक भागीदारी सुनिश्चित होती है। जल संरक्षण का यह पुनीत कार्य है। सबको इस कार्य में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए। हम सबका दायित्व है कि अधिक से अधिक लोग गहरीकरण के कार्यों में अपनी भूमिका का निर्वहन करें। नदी, तालाब गहरीकरण से जहां इन जल स्त्रोतों का गहरीकरण होता है वहीं इससे निकलने वाली मिट्टी भी कृषि के लिए लाभकारी सिद्ध होती है। जल भराव की क्षमता बढ़ती है। हम सबकी जिम्मेदारी है कि हम अपने आसपास के नदी, नाले, तालाबों का गहरीकरण करें और अधिक से अधिक स्त्रोतों को गहरा करें ताकि इनमें अधिक से अधिक पानी जमा हो सके। बढ़ा हुआ यही जल कल हमारे लिए काम आएगा।

पोखरों का निर्माण - हम देखते हैं कि गर्मियों के दिनों में अनेक क्षेत्रों में पानी की विकराल समस्या उत्पन्न हो जाती है। त्राहि-त्राहि मचने लगती है। ऐसे समय में हम थोड़ी सी मेहनत करके अपनी समस्या को हल कर सकते हैं। इसका सरल और सटीक हल है पोखर का निर्माण। पोखर तात्कालिक जल स्त्रोत का जरिया है। कम मेहनत से हम जल की पूर्ति कर सकते हैं। हमारे आसपास ऐसे अनेक क्षेत्र होते हैं जहां से थोड़ी मेहनत से पानी निकाला जा सकता है। थोड़ी सी गहराई में पानी आसानी से उपलब्ध हो सकता है। यह तालाब का छोटा रूप और क्षिरियां का बड़ा रूप है। हमें ऐसे उपायों पर गौर करना चाहिए और पानी की समस्या से बचने के लिये इन उपायों पर काम करना चाहिए।

जल स्त्रोतों की साफ-सफाई - पानी की उपलब्धता के लिए हमारे पास अनेक स्त्रोत हैं। जैसे- तालाब, नदी, नाले, बावड़ी, पोखर आदि। हमें इन जल स्त्रोतों की समय-समय पर साफ सफाई करती रहनी चाहिए ताकि जरूरत पड़ने पर हम इन स्त्रोतों का उपयोग कर सकें। देखने में आता है कि ऐसे क्षेत्र कई हैं जहां जल स्त्रोत तो पर्याप्त हैं लेकिन उन स्त्रोतों की साफ सफाई न होने से हम उनके जल का उपयोग नहीं कर पाते। यदि समय रहते इन जल स्त्रोतों की सफाई हो जाए तो हम इन स्त्रोतों का भी लाभ ले सकते हैं। यह कार्य हम सामूहिक जनभागीदारी से आसानी से कर सकते हैं।

सोख्ता गड्ढों का निर्माण - लगातार जमीन में गिरता जल स्तर हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या है। प्रत्येक वर्ष एक निश्चित फीट पानी का स्तर गिरता जा रहा है। जो गंभीर चिंता का विषय है। इस गंभीर समस्या पर चिंतन की आवश्यकता है। यदि हम अपने घरों में हैण्डपंपों के पास सोख्ता गड्ढों का निर्माण करें तो जमीन में जल स्तर गिरने से बचा सकते हैं। हमें अधिक से अधिक सोख्ता गड्ढों का निर्माण करना चाहिए। इन सोख्ता गड्ढों के माध्यम से व्यर्थ बहता पानी जमीन के अंदर रिसकर जाएगा जो कहीं न कहीं जमीन के अंदर जल के स्तर को स्थिर बनाए रखने में मदद करेगा।

खेत का पानी खेत में - हमारा प्रदेश कृषि प्रधान प्रदेश है। लेकिन आज भी अनेक क्षेत्रों में सिंचाई के साधन मौजूद नहीं हैं। नहरों, नलकूपों, कुओं, नदियों और तालाबों से सिंचाई होती है। उसके बावजूद कृषि का बहुत बड़ा क्षेत्र सिंचाई से वंचित है। यदि 'खेत का पानी खेत में' की परंपरा को अपनाया जाए तो काफी बड़े भू-भाग को सिंचित किया जा सकता है। इसके दो बड़े लाभ होंगे- पहला खेतों की सिंचाई होने से कृषि उत्पादकता में अभूतपूर्व बढ़ोतरी होगी वहीं दूसरी ओर जल स्तर बढ़ जाएगा। यह कार्य भी काफी सरल और सुलभ है। कृषक अपने खेत के कुछ भाग में पाल बंधान करके बरसाती पानी को रोक सकते हैं। फिर उसी पानी से खेत की अन्य फसलों की सिंचाई कर सकते हैं। उसके बाद जब पानी खत्म हो जाए, जगह खाली हो जाए तो उसमें भी कुछ फसलें बोई जा सकती हैं। इस तरह थोड़ी सी मेहनत में भरपूर पैदावार ली जा सकती है।

● **नवीन शर्मा**

पानी, परम्पराएं और समाज

गाँवों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं भिन्न तरह की हैं। एक ग्रामीण के लिये सबसे जरूरी दो वस्तुएं हैं। एक तो उनके घर में साल नहीं तो कम से कम छह माह के लिये पर्याप्त अनाज हो तथा उसके मवेशी के लिये चारा हो। बाकी चीजें वह किसी तरह चला लेता है। सामान्यतः खाद्यान्न की समस्या तो कुछ हद तक, खेती की उपज से हल हो जाती है, परन्तु बीते कुछ वर्षों में खेती की लागत में बढ़ोतरी तथा अल्प वर्षा की वजह से खेती अब घाटे का सौदा हो गयी है। वनों का विनाश, भूमि कटाव, भू-जल स्तर में निरंतर गिरावट इन समस्त बातों से ग्रामीणों का जीवन-यापन बहुत मुश्किल हो गया है।

यदि सामाजिक समस्याओं की बात करें तो हम पायेंगे कि ग्रामीण समाज टूटन का शिकार हो गया है। सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास की वजह से असंगठित हुए ग्रामीणों में समानता, सहकार और सादगी अब बीते समय की बात हो गयी है। इनकी जगह आडम्बर तथा बाजार के दबाव में पैदा हुई कर्ज आधारित जीवन शैली गांव में पनप गई है। अच्छी परम्पराओं का टूटना भी इस समाज की एक बड़ी समस्या है। किसी भी सभ्यता के विकास में पानी का महत्वपूर्ण स्थान है। पानी का अभाव ग्रामीणों की विपन्नता का बड़ा कारण है। जहां पानी उपलब्ध हुआ (यह उपलब्धता हमें पर्यावरण मित्र दृष्टिकोण से देखनी होगी), वहां किसानों ने प्रगति के प्रतिमान स्थापित किये हैं। पानी रोकना ही समस्या का निदान नहीं है, बल्कि पानी रोककर उसके संरक्षण एवं सदुपयोग का एक लोकाधारित तंत्र विकसित करना होगा। तभी बूंदों के रुकने की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

यह अच्छा है कि पानी रोकने का काम जटिल तकनीकी बंधनों से मुक्त होकर आम आदमी की आकांक्षाओं के अनुरूप उसी के हाथों गति पकड़ रहा है। यह होना भी चाहिये। दरअसल, समाज को सूत्रधार बनाये बिना कोई आंदोलन सफल नहीं हो सकता। फिर भी अभी जमीनी स्तर पर इस दिशा में काफी काम करने की आवश्यकता है। जब तक लोग इसे अपना काम मानकर नहीं करते, तब तक पूरे परिणामों के लिये प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। गाँव में इस चेतना को विस्तारित करने की बड़ी आवश्यकता है। पानी बचाने के मामले में हमारा समाज वर्षों पहले अपनी परम्पराओं के बूते पर काफी समृद्ध था। सहभागिता एवं पारस्परिक सहकार के आधार पर पानी बचाना हमारे समाज का वह काम था, जिसका आधार थीं परम्पराएं। कालान्तर में वे परम्पराएं समाप्त होती गयीं। फिर पानी की किल्लत धीरे-धीरे बढ़ने लगी। आज अगर पानी के काम में जो गति दिखायी पड़ रही है और सामाजिक स्तर पर इस काम की गंभीरता को समझा जा रहा है इसलिये कि अब ज्यादातर लोग समझने लगे हैं कि बिना पानी बचाये आगामी पीढ़ियों को जीवित रख पाना कठिन हो जायेगा। इसके साथ ही ग्रामीण समाज भी इस दिशा में सक्रिय हुआ है। यह स्थिति आगे सुखद परिणाम देगी।

लोकसहभागिता और खुद के दम पर गाँवों का विकास किया जाना ग्रामीणों के लिये अब जरूरी हो गया है। लोकआधारित विकास ही स्थायी होगा। सामाजिक न्याय विशेषकर गाँव में चौपाल के न्याय की पुनर्स्थापना, श्रमदान से चरागाह विकास, वन संरक्षण, ग्रामकोष जैसे क्षेत्रों में लोगों को आगे लाने का वातावरण बनाना चाहिये।

यदि समुचित जलप्रबंधन गाँव में कर लिया जाये तो ग्रामीण समाज की विपन्नता को निश्चित ही दूर किया जा सकता है क्योंकि पानी का संरक्षण एवं प्रबंधन गाँवों की खुशहाली का एकमात्र रास्ता हो सकता है। साथ ही गाँव के समाज के लिये यह भी आवश्यक होगा कि हम एक आचार संहिता बनाकर उस पर अमल करें। सामाजिक सुपरम्पराओं के लिये पुनर्स्थापना का वातावरण बने तथा समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति को ऊपर उठाने के लिये साझा प्रयास किये जाएं।

जलग्रहण क्षेत्र हमारे देवालय हैं। इनका महिमा मण्डन, देखभाल और रख-रखाव अत्यन्त आवश्यक है। यह काम साझा रूप में जिम्मेदारीपूर्वक समाज ही करें तो बेहतर होगा।

जल स्त्रोत रिचार्जिंग में सावधानी जरूरी

देश के अनेक भागों में जल संग्रहण के कार्य किए जा रहे हैं। इसके तहत जल स्रोतों-कुओं और ट्यूबवेलों की रिचार्जिंग (पुनर्भरण) भी बड़े पैमाने पर की जा रही है। हैण्डपंपों के आसपास सोख्ता गड्ढे बनाने का भी व्यापक प्रचार किया जा रहा है। छत से जल स्रोत रिचार्जिंग एक हद तक सुरक्षित है, लेकिन ऐसे मामलों, जहां रिचार्जिंग के लिये जमीन या खेतों से गुजर कर पानी आता है, में सावधानी रखना जरूरी है। कुओं और ट्यूबवेलों की रिचार्जिंग के पूर्व इसके खतरों को भी जानना जरूरी है। अन्यथा भू-जल भण्डार समृद्ध होने के स्थान पर प्रदूषित तथा अनुपयोगी भी हो सकते हैं।

रासायनिक प्रदूषण - कुआं अथवा ट्यूबवेल रिचार्जिंग के लिये सामान्यतः रेत के फिल्टर का इस्तेमाल किया जाता है। इस फिल्टर से धूल कण तथा जीवाणु संबंधी अशुद्धि तो दूर हो जाती है, लेकिन रासायनिक अशुद्धियों को साफ करने में यह सक्षम नहीं है। पानी के भूमि की परतों से गुजरने पर रासायनिक अशुद्धियों को साफ करने की क्षमता इस फिल्टर में नहीं होती है। आज शायद ही कोई ऐसा खेत हो जहां रासायनिक खाद और कीटनाशकों का प्रयोग नहीं किया जाता हो। रिचार्जिंग के लिये पानी तो खेत से ही बहकर आता है, ऐसे में उस पानी में रासायनिक प्रदूषण होने से इनकार नहीं किया जा सकता। शहरों के ट्यूबवेलों को रिचार्ज करने वाला पानी भी सीवर लाईन से मिला हो सकता है। रासायनिक अशुद्धियों वाला पानी कुएँ/ट्यूबवेल से होकर भूमिगत जलभण्डार में मिल जाता है। रासायनिक अशुद्धि वाले इस पानी को सिंचाई के लिए तो काम में लिया जा सकता है, लेकिन यह पेयजल के लिए उपयुक्त नहीं है। हम ऐसे जलस्रोतों को पेयजल के लिये प्रतिबंधित कर सकते हैं, लेकिन इससे समस्या का हल नहीं होगा। क्योंकि ऊपर से अलग-अलग दिखाई देने वाले जल स्रोतों के भू-जल भण्डार तो अलग-अलग नहीं होते हैं। एक कुएँ में प्रवेश हुई रासायनिक अशुद्धि पूरे जल भण्डार को प्रदूषित कर सकती है। और इस जल भण्डार से जुड़े समस्त जल स्रोत स्वतः प्रदूषित हो सकते हैं।

सीमेन्टीकरण प्रभाव - रेत के फिल्टर से रासायनिक प्रदूषण के साथ ही धूल के महीन कण भी पार हो जाते हैं। ये कण जलस्रोत के तल में बैठकर तलछट पैदा करते हैं। तलछट जल भण्डार और कुओं के मध्य पानी के रास्ते को बन्द कर सकती हैं। सिल्ट कणों के पानी के रास्ते में जमने अथवा रासायनिक प्रक्रिया करने से जल स्रोत के जल द्वार हमेशा के लिए बंद हो सकते हैं और कुएं का जल स्तर बढ़ने के बजाए घट भी सकता है। इन कारणों से जल स्रोत रिचार्जिंग प्रक्रिया में अत्यन्त सावधानी रखने की जरूरत है। एक बार भू-जल भण्डार के प्रदूषित हो जाने के बाद उससे जुड़े समस्त जलस्रोत प्रदूषित हो सकते है। प्रदूषित जल भण्डारों को प्रदूषण मुक्त करना लगभग असंभव ही है। इसके अतिरिक्त जल स्रोत रिचार्जिंग के समय भू-जल भण्डार की ग्राह्यता का अध्ययन भी जरूरी है। भू-गर्भीय कारणों से कई बार भू-जल भण्डार कृत्रिम तरीके से किए गए रिचार्जिंग को स्वीकार नहीं करते। ऐसे में क्षेत्र विशेष में भू-जल भण्डारों की जल ग्राह्यता का अध्ययन करना चाहिये।

● **नेहमत**

मोबाइल मैसेज प्रेरित करेंगे मतदान के लिए

पंचायिका के लिए इस बार बड़ी संख्या में पाठकों के ऐसे पत्र मिले हैं जिसमें लोकसभा चुनाव के दौरान प्रशासनिक प्रबंधों की सराहना की गई है। डिण्डौरी के चैतराम ने जहाँ मोबाइल मैसेज से मतदाताओं को जागरूक बनाने की सराहना की है वहीं जबलपुर से आकाश अवस्थी ने इस बार मतदाताओं के लिए बुनियादी प्रबंधों की प्रशंसा की है। आप भी यदि निर्वाचन प्रबंध अथवा ग्रामीण विकास पर अपनी कोई राय रखते हैं तो हमें पत्र लिखकर सूचित करें, हमें आपका पत्र छापने में प्रसन्नता होगी।

चौंतीस लाख मतदाता पायेंगे संदेश

सम्पादक जी! आगामी लोकसभा चुनाव में भारत संचार निगम लिमिटेड अपने चौंतीस लाख मोबाइल उपभोक्ताओं को मोबाइल संदेश के माध्यम से मतदान के लिए प्रेरित करेंगे। मतदाताओं को जागरूक करने और उन्हें मतदान के लिए प्रेरित किये जाने वाले स्वीप प्लान के तहत यह संदेश कारगर होंगे। अच्छी बात यह भी है कि ऐसे संदेश बी.एस.एन.एल. के लैण्डलाइन उपभोक्ताओं को भी भेजे जायेंगे। ऐसे प्रयत्नों से मतदान का प्रतिशत जरूर बढ़ेगा।

चैतराम मरकाम
सामाजिक कार्यकर्ता, डिण्डौरी (म.प्र.)

मतदान केन्द्र पर बुनियादी सुविधाएं

सम्पादक जी ! लोकसभा चुनाव में मतदान की तिथियाँ आने तक मौसम और गर्म हो जायेगा। आमतौर पर मतदान केन्द्रों में छाया और हवा की समुचित व्यवस्था तो होती ही है इस बार मुख्य निर्वाचन अधिकारी कार्यालय के निर्देशानुसार ठण्डा पीने के पानी सहित सभी बुनियादी सुविधाएं मुहैया करवाने के निर्देश दिये हैं। इस व्यवस्था के बाद निश्चित रूप से मतदान का प्रतिशत बढ़ेगा। मतदान केन्द्र प्रायः सरकारी भवनों यथा स्कूलों में होते हैं अतः पंक्तिबद्ध मतदाताओं को छाँह में खड़े होने की सुविधा दी जाये।

आकाश अवस्थी
मदन महल, जबलपुर (म.प्र.)

स्थगन एक उपयुक्त निर्णय है

सम्पादक जी ! प्रदेश की ग्राम पंचायतों में पिछले दिनों वार्डों के परिसीमन की जो कार्रवाई आरम्भ हुई थी उसे मुख्य निर्वाचन पदाधिकारी के निर्देश पर लोकसभा चुनाव के मद्देनजर स्थगित कर दी गई है। यह वास्तव में एक उपयुक्त निर्णय है क्योंकि यदि ऐसा परिसीमन लोकसभा चुनाव के दरमियान किया जाता तो उससे जनमत प्रभावित हो सकता था। अब प्रदेश में तीन चरणों में होने वाले मतदान के पश्चात यानी चौबीस अप्रैल के बाद परिसीमन का कार्य आरंभ हो सकेगा।

जयेश शाह
गांधी चौक, सेन्धवा (म.प्र.)

चिट्ठी चर्चा

चुनाव में सुचारु बनी रहेगी संचार व्यवस्था

जनजातीय आबादी बहुल अलीराजपुर जिले के सारंगी गाँव के वरसिंह पटेल ने अपनी चिट्ठी में आगामी लोकसभा चुनाव में संचार व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त बनाये रखने के लिए भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा नोडल अधिकारियों की नियुक्ति को एक अच्छा कदम बताया है। वरसिंह ने बताया कि उनके जिले में पदस्थ टेलीकॉम अधिकारी एम.एन. मीणा की पदस्थापना से इस सुदूरवर्ती इलाके में चुनाव के दौरान संचार व्यवस्था सुचारु बने रहने की संभावना बढ़ी है। इधर लोकसभा चुनाव की घोषणा के साथ ही छिन्दवाड़ा के महेन्द्र वर्मा ने मतदाता जागरूकता अभियान में महाविद्यालयीन छात्र-छात्राओं की सक्रियता के लिए महाविद्यालय स्तर पर ब्राण्ड अम्बेसेडर्स के सम्मेलन की मांग की है। लोकसभा चुनाव के पहले मतदाता सूची में नाम जुड़वाने के लिए बूथ लेवल सहायता केन्द्र और एक तय तिथि पर छोटे-छोटे गाँव और कस्बों में भी नाम जुड़वाने के प्रति उत्साह की चर्चा भी महेन्द्र जी ने अपनी चिट्ठी में की है। सक्रिय राजनीति से जुड़े हमारे एक पाठक श्री श्याम मालवीय ने देवास से लिखी चिट्ठी में भारत निर्वाचन आयोग द्वारा लोकसभा चुनाव 2014 में संसदीय क्षेत्र के उम्मीदवार की चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा सत्तर लाख रुपये तय करने के निर्णय की प्रशंसा की है। श्याम लिखते हैं कि संसदीय क्षेत्र की व्यापक सीमाएं और प्रचार के बढ़ते खर्च को देखते हुए यह एक उपयुक्त निर्णय है। सतना से अभिषेक तिवारी ने मुख्य निर्वाचन पदाधिकारी कार्यालय द्वारा प्रदेश के सभी जिलों में कम मतदान वाले दस प्रतिशत क्षेत्रों में स्वीप गतिविधियाँ व्यापक स्तर पर चलाने को भी एक अच्छा कदम बताया है। रतलाम से प्रेस फोटोग्राफर लगन शर्मा का मानना है कि जिनके मकान की स्थिति प्रचार-प्रसार के लिए उपयुक्त होती है वहाँ सभी राजनैतिक दल झण्डे, बैनर और होर्डिंग लगाने को उत्सुक रहते हैं मगर सम्पत्ति विरूपण निवारण अधिनियम के प्रभावशील होने से कोई भी राजनैतिक दल अथवा प्रत्याशी अब बिना मकान मालिक की अनुमति के किसी भी मकान पर अपना झण्डा, बैनर या पोस्टर नहीं लगा सकेंगे। लगन अपनी चिट्ठी में इस अधिनियम के प्रावधानों की सराहना तो करते ही हैं साथ ही इस कानून पर सख्ती से अमल की प्रशंसा भी करते हैं। गाँवों की तुलना में कस्बों और शहरों में मकान मालिकों को इस समस्या का सामना ज्यादा करना पड़ता है जिससे अब बचाव संभव है।

¤ÉÉiÉ {ÉiÉ EòÉ

{É½±ÉÉ ¨ÉiÉnùÉxÉ ½þÉ

जन-जन तक पहुँचाओ प्रजातंत्र का पैगाम।
सबसे पहले मतदान हो, फिर दूजा काम।।
मतदान कर्तव्य है, अधिकार भी है -
मतदान से ही हासिल होता है सत्ता का मुकाम।।

विनोद शर्मा
एफ-305 राजहर्ष कॉलोनी
कोलार, भोपाल

¨ÉiÉnùÉiÉÉ Eòä {ÉjÉ

|É¦ÉÉ´ÉÒ +ºÉ®ú ´ÉÉ±ÉÉ ÊxÉhÉÇªÉ

सम्पादक जी ! किसी भी जिम्मेदारी के पद को ग्रहण करते समय किसी भी महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वहन के पहले अथवा किसी भी राष्ट्रीय महत्व के कार्य के सम्पादन के पहले शपथ ग्रहण करना एक उत्सवधर्मी प्रक्रिया तो है ही उसका विधिक तथा मनोवैज्ञानिक असर भी होता है। इसी सकारात्मक प्रभाव को देखते हुए लोकसभा चुनाव में पहली बार मतदाताओं को मतदान के पहले शपथ लेने का प्रावधान किया गया है। यह प्रभावी असर वाला निर्णय है।

शरद शुक्ला
60 कृष्णपुरा, देवास (म.प्र.)

EòÉ{ÉÒªÉÉ ¤ÉiÉÉB

Ê|ÉªÉ ºÉ®ú{ÉSÉ VÉÒ, VÉèºÉÉ ÊEò +É{É VÉÉxÉiÉä ½éþ ½þ "EòÉ{ÉÒªÉÉ ¤ÉiÉÉB' EòÉì±É¨É ¨Éå ½þ¨É +É{ÉEòä ½þ®ú ¨ÉÉÉ½þ ÊEòºÉÒ BEò ªÉÉäVÉxÉÉ Eäò xÉÉ¨É ºÉZÉÉiÉä ½þé* +É{É =ºÉ ªÉÉäVÉxÉÉ Eäò ¤ÉÉ®äú ¨Éå {ÉSÉÉªÉiÉÉå uÉ®úÉ CªÉÉ ÊEòªÉÉ MÉªÉÉ ½èþ iÉlÉÉ CªÉÉ +É®úä ÊEòªÉÉ VÉÉ ºÉEòiÉÉ ½èþ =ºÉ ¤ÉÉ®äú ¨Éå ºÉ´ÉiÉÆjÉ Ê]õ{{ÉhÉÒ Ê±ÉJÉå ºÉEòÉMÉ* =ºÉ Ê]õ{{ÉhÉÒ Eòä xÉÒSÉä +{ÉxÉÉ xÉÉ¨É, {ÉnùxÉÉ¨É, ÒÉ¨É {ÉSÉÉªÉiÉ Eäò xÉÉ¨É, VÉxÉ{Énù {ÉSÉÉªÉiÉ Eäò xÉÉ¨É, ÊVÉ±ÉÉ {ÉSÉÉªÉiÉ Eäò xÉÉ¨É iÉlÉÉ ¦ÉäVÉxÉä EòÒ iÉÉ®úÒJÉ +´É¶ªÉ Ê±ÉJÉå* <ºÉ ºiÉ¨¦É ¨Éå ½þ¨É {ÉÉ`öEòÉå ºÉä ¤ÉcÒ ºÉJªÉÉ ¨Éå |ÉÉ´ÉÎ¹]õªÉÉ Ê¨É±ÉxÉä Eòä =¨¨ÉÒnù ®ú½þiÉä ½èþ* {ÉSÉÉªÉiÉ ®úÉVÉ ºÉºlÉÉªÉ +ÊvÉEòÉè¶ÉÉ ºÉ®úEòÉ®úÉå ªÉÉäVÉxÉÉ+Éå Eäò ºÉSÉÉ±ÉxÉ ¨Éå xÉÉb÷±É BVÉäºÉÒ EòÉ EòÉªÉÇ Eò®úiÉä ½éþ* <ºÉ oÎ¹]õ ºÉ ÊEòºÉÒ ¦ÉÒ ºÉ®úEòÉ®úÒ ªÉÉäVÉxÉÉ Eäò ÊGòªÉÉx´ÉªÉxÉ ¨Éå ºÉ¤ÉºÉ |É¦ÉÉ´ÉÒ Ê]õ{{ÉhÉÒ {ÉSÉÉªÉiÉ ®úÉVÉ ºÉºlÉÉ EòÒ ½þÉäiÉÒ ½èþ*

+|Éè±É 2014 Eäò Ê±ÉB <ºÉ ¤ÉÉ®ú Ê´É¹ÉªÉ ½þ

CªÉÉ +É{ÉEòÒ OÉÉ¨É {ÉSÉÉªÉiÉ EòÉ VÉ±É ºÉ®ú/IÉhÉ Eäò Ê±ÉB |ÉÉiºÉÉÊ½þiÉ ÊEòªÉÉ VÉÉ ®ú½þÉ ½þè?

¶ÉºÉÉ®úhÉ Eäò Eò¤ÉiÉÉ

शपथ

शपथ लें प्रजातंत्र का
करेंगे सम्मान।
निर्भय - निष्पक्ष रह-
करेंगे मतदान।।
कायम रखेंगे
लोकतंत्र की मर्यादा।
निर्वाचन की गरिमा का -
निभायेंगे वादा।।
शान्तिपूर्ण होगा
हर बूथ में मतदान ।।1।।
शपथ लें .....
धर्म, वर्ग, जाति का
भेद न मन में लायें।
भाषा, समुदाय से हट -
कर्तव्य निभायें।।
प्रलोभन के त्याग का
करेंग आव्हान ।।2।।
शपथ लें .....
शपथ लें संविधान का
रखेंगे हम मान।
लोकतंत्र का करेंगे,
यशगान।।
पहले होगी शपथ
फिर हो मतदान ।।3।।
शपथ लें .....

श्रीमती संध्या दुबे
भोपाल

½þ¨ÉÉ®úÉ {ÉiÉÉ

ºÉÆ{ÉÉnùEò
"¨ÉvªÉ|Énù¶É {ÉSÉÉÉªÉiÉEòÉ'
¨ÉvªÉ|Énù¶É ¨ÉÉvªÉ¨É
40, |É¶ÉÉºÉÊxÉEò IÉäjÉ, +®ú®úÉ Ê½±É, ¦ÉÉä{ÉÉ±É - 462011
¡òÉäxÉ : **2764742, 2551330**
¡èòCºÉ : **0755-4228409**
EòÉ{ÉÒªÉÉ ´ÉÉÌ¹ÉEò ºÉÉ½þEò ¤ÉxÉxÉä Eäò Ê±ÉB +{ÉxÉä ºÉÉ ¯û{ÉªÉä Eäò bÅ¡]õ/¨ÉxÉÒ+Éb÷®ú ¨ÉvªÉ|Énù¶É ¨ÉÉvªÉ¨É, ¦ÉÉä{ÉÉ±É Eäò xÉÉ¨É ºÉä ¦ÉäVÉå*